B.A. III Sem.
Fine Art

# 1

# आरम्भिक युग

भारतीय मूर्त्तिकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इसका सम्बन्ध मानव-सभ्यता के विकास से रहा है। मानव सभ्यता का विकास निम्नलिखित युगों में बाँटा गया है—

**1. प्रारम्भिक प्रस्तर युग**—इस युग में मनुष्य वनों में रहता और अनगढ़ पत्थरों के औजार और हथियार बनाकर काम में लाता था।

**2. मध्य प्रस्तर युग**—इस युग में मनुष्य पत्थरों को विभिन्न प्रकार से नुकीला करके औजार तथा हथियार बनाता था। इस युग में मनुष्य को ताँबे का भी पता चल गया था।

**3. नव प्रस्तर युग**—इस युग में मनुष्य मिट्टी के पात्रों का हाथ से निर्माण करता था।

**4. काँस्य युग**—इस युग में कांसे का प्रयोग आरम्भ हो गया था और मनुष्य ने चाक पर बर्तन बनाना भी आरम्भ कर दिया था।

**5. लौह युग**—इस युग में मनुष्य ने लोहे का पता लगा लिया था और उसे प्रयोग में लाने लगा था।

भारत में प्रागैतिहासिक मनुष्य द्वारा बनायी गयी कलात्मक वस्तुओं के उदाहरण नव पाषाण युग से ही उपलब्ध होने लगते हैं जिनका समय लगभग 15 हजार वर्ष ई० पू० है। इस युग की ताँबे की बनी पूजनीय आकृतियाँ भारत कला भवन काशी में सुरक्षित हैं। ये उदाहरण शिवराजपुर (जिला कानपुर) में मिले हैं। (आकृति 1)

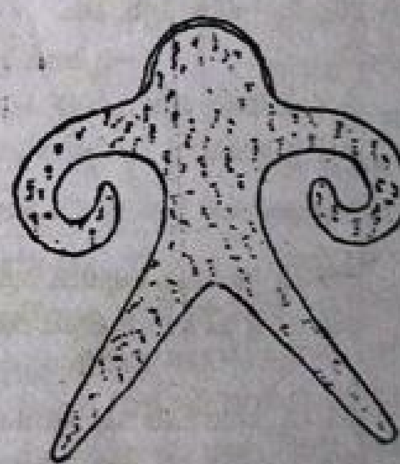

आकृति 1

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भ से ही भारतीय कला का उपयोग पूजा आदि धार्मिक कार्यों के लिये किया जाता था। इस प्रकार भारतीय कला का मुख्य उद्देश्य धार्मिक तथा आध्यात्मिक रहा है।

## (क) सिन्धु घाटी की कला

ताँबे के पत्रों को काट कर बनायी गयी उपरोक्त आकृतियों के बाद भारतीय मूर्त्ति-कला का इतिहास सिन्धु घाटी की सभ्यता से आरम्भ होता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता को कुछ लोग आर्य मानते हैं, कुछ द्रविड़ मानते हैं। इसका सम्बन्ध मैसोपोटामिया तथा फारस की सभ्यता से भी जोड़ा जाता है। सिन्धु सभ्यता के मुख्य केन्द्र हड़प्पा और मोहनजोदड़ो आदि हैं। इन

2

## भारतीय मूर्तिकला एक परिचय

ों पर मुहरें, मिट्टी तथा पत्थर की मूर्त्तियाँ, मिट्टी के खिलौने, धातु की मूर्त्तियाँ एवं खिलौने प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त उस समय की कला के उदाहरण गुजरात के लोथल, सौराष्ट्र, ब के रोपड़, राजस्थान के गंगानगर तथा भीलवाड़ा जिलों और उत्तर प्रदेश के मेरठ तथा आदि जिलों में भी मिलें हैं। इन सबसे यह स्पष्ट है कि उस समय उत्तरी भारत के अनेक में सभ्यता का विकास हो रहा था। इनमें आपस में कोई सम्बन्ध था या नहीं यह निश्चित है पर इन सब में हड़प्पा सभ्यता को प्रमुख माना जाता है। सिन्धु की हड़प्पा सभ्यता विकास 2500 ई० पू० के लगभग से 1100 ई० पू० के लगभग तक माना जाता है। यहाँ मूर्ति कला से सम्बन्धित कृतियों का विवरण निम्न प्रकार है—

**पाषाण मुद्राएँ—मोहरें या टिकरे**—ये मुद्राएँ बहुत अधिक संख्या में प्राप्त हुई हैं। ये हाथी पकाई हुई मिट्टी तथा एक विशेष प्रकार के नीले या सफेद चमकीले पत्थर की हैं। सभी ीं चौकोर हैं तथा लगभग $2\frac{1}{2}$" लम्बाई तथा चौड़ाई से अधिक नहीं हैं। इनमें प्राय: वास्तविक काल्पनिक पशुओं की आकृतियाँ अंकित हैं। मुहरों के सपाट धरातल पर ये आकृतियाँ उभरी बनाई गयी हैं तथा इनके निकट सिन्धु सभ्यता की तत्कालीन लिपि में कुछ लिखा हुआ भी से अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। निम्नलिखित मुहरें मुख्य हैं—

आकृति-2

**पशु पति मुद्रा**—यह मुद्रा 3·4 सेमी० लम्बी, 3·4 सेमी० चौड़ी तथा 1·4 सेमी० मोटी है। इसमें पशुओं से घिरे एक योगी को अंकित किया गया है। यह समझा जाता है कि यह शिव की आकृति है जिनके सिर पर बड़े-बड़े सींगों वाला मुकुट हैं। पशु अंकित होने के कारण इसे पशुपति मुद्रा कहा जाता है। यह मुद्रा हड़प्पा युग के धर्म से सम्बन्धित है। (आकृति-2)

**वृषभ मुद्रा**—यह मुद्रा 2·5 सेमी० लम्बी, 2·5 सेमी० चौड़ी तथा 1·4 सेमी० मोटी है। इस पर ट सहित बैल की बहुत सुन्दर आकृति बनी है जिसमें महान् शक्ति और शौर्य दर्शाया गया (आकृति-3)

**पशुओं के शिर सहित पीपल वृक्ष की मुद्रा**—यह मुद्रा 3·3 सेमी० लम्बी, 3·3 सेमी० ी तथा 1·4 सेमी० मोटी है। इस पर पौधे की भाँति पीपल का अंकन है जिसके तने में और पशुओं के मुख दिखाये गये हैं। इनके मस्तक के अग्रभाग से एक-एक सींग भी ला हुआ है। (आकृात-3)

**दो बाघों के मध्य एक मनुष्य की मुद्रा**—यह मुद्रा 3 × 3 सेमी॰ लम्बी, चौड़ी तथा 1·4 सेमी॰ मोटी है। इस मुद्रा पर एक मनुष्य दोनों हाथ फैलाये बीच में खड़ा अंकित है जिसके दोनों ओर दो बाघ मनुष्य की भाँति खड़े हैं।

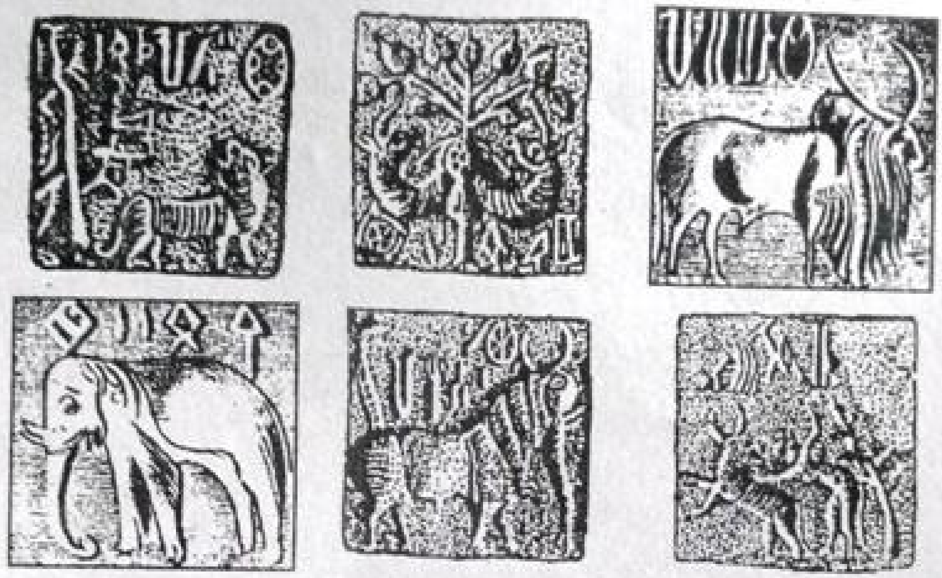

आकृति -3

**एक शृंग मुद्रा**—यह मुद्रा 5·7 सेमी॰ लम्बी, 5·7 सेमी॰ चौड़ी तथा 2·5 सेमी॰ मोटी है। इस पर एक ऐसा पशु अंकित है जो घोड़े के समान प्रतीत होता है किन्तु उसके मस्तक पर आगे की ओर एक सींग निकला हुआ है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के एक शृंग पशु की बहुत सी मुद्राएँ मिली हैं।

एक अन्य मोहर पर मनुष्य की मुखाकृति वाला एक बकरा खड़ा है। उसके आगे एक व्यक्ति झुका हुआ पीपल की शाखाओं से घिरे किसी देवता की उपासना कर रहा है। अन्य मोहरों पर भैंसे के द्वारा गिराया हुआ मनुष्य, धार्मिक स्तम्भ के समक्ष बैल को लांघता हुआ एक पुरुष आदि की आकृतियाँ बनी हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ मुद्राओं पर हाथी या शमी वृक्ष भी अंकित है। अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि ये मुद्राएँ किस काम में आती थीं।

**मूर्त्तियाँ**—उपर्युक्त मोहरों के अतिरिक्त यहाँ जो मूर्त्तियाँ मिली हैं उनमें से कुछ महत्वपूर्ण मूर्त्तियाँ निम्न हैं—

**पुरुष की आवक्ष मूर्त्ति**—सफेद चूना पत्थर से निर्मित यह मूर्त्ति 18 सेमी॰ ऊँची, 11 सेमी॰ चौड़ी तथा 8 सेमी॰ मोटी है। इसमें आरम्भिक मनुष्य की सभ्य वेश भूषा प्रदर्शित की गयी है। इसकी मुखाकृति में मूँछें साफ की गयीं तथा दाढ़ी संवार कर बनायी हुई अंकित है। यह माथे तथा भुजा में आभूषण धारण किये हुए है तथा बाँये कन्धे पर से होता हुआ शाल पहने है। शाल पर तिफूलिया अलंकरण बना है। इसकी मुख मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता है मानों यह किसी ध्यानावस्थित पुजारी की मूर्त्ति है।

नर्तक की मूर्ति—भूरे चूना पत्थर की यह मूर्ति 10 सेमी० ऊँची, 4 सेमी० चौड़ी तथा 3 सेमी० मोटी है। इसके सिर तथा हाथ नहीं हैं और पैर भी आधे टूटे हुए हैं। कन्धों तथा गर्दन के छेदों से प्रतीत होता है कि सिर तथा हाथ अलग से जोड़े जाते थे। इसका एक पैर मुड़ा हुआ नाचने की मुद्रा में है।

पुरुष धड़—लाल चूना पत्थर का यह धड़ 9·2 सेमी० ऊँचा, 5·8 सेमी० चौड़ा तथा 3 सेमी० मोटा है। यह उस समय की मूर्तिकला का अनुपम उदाहरण है जिसमें शारीरिक उतार चढ़ाव तथा मांसलता को बड़े ही सुन्दर ढंग से दिखाया गया है। इसके सिर तथा हाथ भी अलग से जोड़े गये थे जो अब इसमें नहीं है।

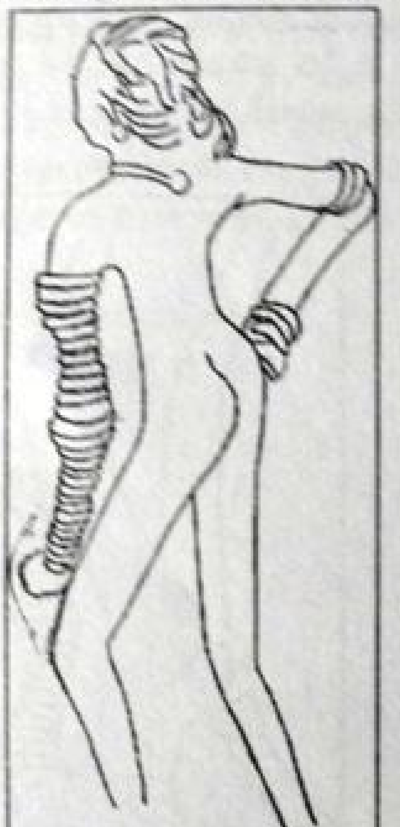

आकृति-4

नर्तकी की धातु मूर्ति—ताँबे की यह मूर्ति 10·5 सेमी० ऊँची, 5 सेमी० चौड़ी तथा 2·5 सेमी० मोटी है। यह हड़प्पा युग के धातुकार की महान उपलब्धि है। नृत्य के बाद कमर पर हाथ रखकर विश्राम करती हुई स्थिति में यह बड़ी सुन्दरता से अंकित की गयी है। (आकृति-4)

खिलौने—इस सभ्यता में धातु तथा पकाई हुई मिट्टी के अनेक खिलौने भी मिले हैं। धातु का ढाला हुआ बैल, पकाई मिट्टी के मातृका देवी, भेड़, बैल, कछुआ तथा बन्दरों आदि के खिलौने, रस्सी पर खिसकने वाला बन्दर, गर्दन हिलाने वाले पशु का खिलौना, चिड़िया गाड़ी तथा अन्य अनेक सीटी बजाने वाले खिलौने, आलिंगन करते हुए दो बन्दरों का चीनी मिट्टी का खिलौना आदि यहाँ के कुछ प्रसिद्ध नमूने हैं।

उक्त समस्त कला-कृतियों के आधार पर कहा जा सकता है कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो के कलाकार निपुण कारीगर थे। वे धातु, पत्थर तथा मिट्टी की मूर्तियाँ और खिलौने बड़ी कुशलता से बनाते थे। इनमें स्त्रियों तथा पुरुषों के अनेक सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र अंकित हुए हैं। इन लोगों को मधूच्छिष्ट क्रिया द्वारा धातु की मूर्तियाँ ढालना आता था। इस विधि में पहले मोम की मूर्ति बना लेते हैं। इसे मिट्टी की परतों से लपेट कर सुखा लेते हैं और पकाते हैं। गरम होने से अन्दर का मोम पिघल कर बाहर निकल जाता है। इस प्रकार बने मिट्टी के खोखले साँचे में पिघली हुई धातु भर देते हैं जो कड़ी होने पर मूर्ति का रूप धारण कर लेती है। फिर मिट्टी को हटा देते हैं।

भारतीय कला के इतिहास में सिन्धु घाटी की सभ्यता का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ जिन रूपों की रचना का आरम्भ हुआ था, उनका विकास आगे चलकर भारतीय कला के ऐतिहासिक युगों में हुआ। मूर्तिकला में गढ़नशीलता के साथ सजीवता तथा सौन्दर्य की जो

पद्धति सिन्धु सभ्यता की कला में अपनायी गयी थी, उसी की परम्परा आगे चलकर भारतीय मूर्ति कला में विकसित हुई। 1500 ई० पू० के लगभग महाराष्ट्र के दाइमाबाद क्षेत्र में काँसे की ढली हुई बैलगाड़ी प्राप्त हुई है, जो उस युग की अत्यन्त कुशल कारीगरी का नमूना है।

श्री रायकृष्णदास का विचार है कि सिन्धु सभ्यता के टिकरों (मोहरों) पर जो चिन्ह और आकृतियाँ अंकित हैं, उनमें से कुछ ईसवी पूर्व सात-आठ सौ वर्ष से लेकर ईसवी सन् के आरम्भ होने तक हमारे सिक्कों पर बनायी जाती थीं। इस सभ्यता में अकीक पत्थर के मनकों पर जो धारियाँ बनाई जाती थीं उनका प्रयोग भी भारतीय आभूषणों में ईसवी सन् के आरम्भ तक मिला है। सिन्धु की मूर्त्तियों में जो नारी-आभूषण अंकित हैं वे भारतीय नारियों द्वारा पहने जाते रहे हैं। पालथी लगाये ध्यान मुद्रा में जो योगी अथवा पशुपति की आकृति है, उसका विकास आगे चलकर ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध धर्मों की मूर्त्तियों में हुआ है।

## (ख) वैदिक युग की कला

वैदिक युग में भारतवर्ष में अनेक देवी देवताओं की पूजा की जाती थी। उनकी प्रतिमाएँ भी बनती थीं जो अब उपलब्ध नहीं है। उस समय के स्मारकों के अवशेष केवल बिहार के लौरिया-नन्दगढ़ नामक स्थान पर ही मिले हैं। ये प्राय: श्मसानों के रूप में हैं। यहाँ सोने की पत्री पर स्त्री की अंकित आकृति मिली है। इसका आकार 2" × 1" है। यह षट्कोण है और इस पर उल्टी ओर से ठोक कर पत्री को उभार देकर स्त्री की आकृति बनायी गयी है। इस नग्न आकृति में स्त्रीत्व के चिन्हों को बड़ा करके दिखाया गया है जो सम्भवत: उर्वरता के प्रतीक के रूप में कल्पित किये गये हैं। इसे पृथ्वी माता या श्री (लक्ष्मी) की आकृति माना जाता है।

## (ग) शैशुनाक तथा नन्द कला

इसका समय 727 ई० पू० से 325 ई० पू० तक का है। मूर्त्तिकला की दृष्टि से यहीं से ऐतिहासिक काल का आरम्भ होता है। भारत में अब तक ऐतिहासिक काल की जो मूर्त्तियाँ मिली हैं वे मगध के शैशुनाक वंश के कुछ राजाओं की हैं। कुछ पर उनके नाम भी खुदे हैं।

**अजातशत्रु (परखम यक्ष) की मूर्त्ति**—इन मूर्त्तियों में सबसे पुरानी मूर्ति अजातशत्रु की है। यह बुद्ध का समकालीन था। उस समय मृत पूर्वजों की प्रतिमाएँ बनवाने की परम्परा थी, जैसा कि महाकवि भास के ''प्रतिमा नाटकम्'' से ज्ञात होता है। जहाँ ये मूर्त्तियाँ रखी जाती थीं वह स्थान 'देवकुल' कहलाता था। अजातशत्रु की यह मूर्ति मथुरा के समीप परखम नामक गांव में मिली थी। अत: इसे परखम यक्ष भी कहा जाता है। लगभग 9 फुट ऊँची यह मूर्त्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। (आकृति-5)

आकृति-5

**नर्तक की मूर्त्ति**—भूरे चूना पत्थर की यह मूर्त्ति 10 सेमी० ऊँची, 4 सेमी० चौड़ी तथा 5 सेमी० मोटी है। इसके सिर तथा हाथ नहीं हैं और पैर भी आधे टूटे हुए हैं। कन्धों तथा गर्दन के छेदों से प्रतीत होता है कि सिर तथा हाथ अलग से जोड़े जाते थे। इसका एक पैर मुड़ा हुआ नाचने की मुद्रा में है।

**पुरुष धड़**—लाल चूना पत्थर का यह धड़ 9·2 सेमी० ऊँचा, 5·8 सेमी० चौड़ा तथा 3 सेमी० मोटा है। यह उस समय की मूर्त्तिकला का अनुपम उदाहरण है जिसमें शारीरिक उतार चढ़ाव तथा मांसलता को बड़े ही सुन्दर ढंग से दिखाया गया है। इसके सिर तथा हाथ भी अलग से जोड़े गये थे जो अब इसमें नहीं है।

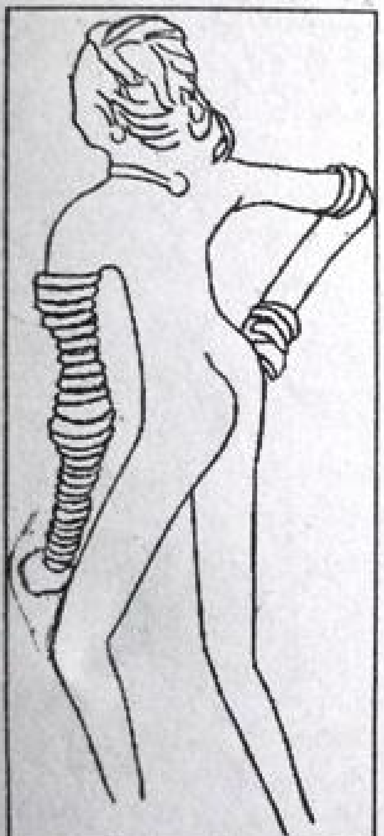

आकृति-4

**नर्तकी की धातु मूर्त्ति**—ताँबे की यह मूर्त्ति 10·5 सेमी० ऊँची, 5 सेमी० चौड़ी तथा 2·5 सेमी० मोटी है। यह हड़प्पा युग के धातुकार की महान उपलब्धि है। नृत्य के बाद कमर पर हाथ रखकर विश्राम करती हुई स्थिति में यह बड़ी सुन्दरता से अंकित की गयी है। (आकृति-4)

**खिलौने**—इस सभ्यता में धातु तथा पकाई हुई मिट्टी के अनेक खिलौने भी मिले हैं। धातु का ढाला हुआ बैल, पकाई मिट्टी के मातृका देवी, भेड़, बैल, कछुआ तथा बन्दरों आदि के खिलौने, रस्सी पर खिसकने वाला बन्दर, गर्दन हिलाने वाले पशु का खिलौना, चिड़िया गाड़ी तथा अन्य अनेक सीटी बजाने वाले खिलौने, आलिंगन करते हुए दो बन्दरों का चीनी मिट्टी का खिलौना आदि यहाँ के कुछ प्रसिद्ध नमूने हैं।

उक्त समस्त कला-कृतियों के आधार पर कहा जा सकता है कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो के कलाकार निपुण कारीगर थे। वे धातु, पत्थर तथा मिट्टी की मूर्त्तियाँ और खिलौने बड़ी कुशलता से बनाते थे। इनमें स्त्रियों तथा पुरुषों के अनेक सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र अंकित हुए हैं। इन लोगों को मधूच्छिष्ट क्रिया द्वारा धातु की मूर्त्तियाँ ढालना आता था। इस विधि में पहले मोम की मूर्त्ति बना लेते हैं। इसे मिट्टी की परतों से लपेट कर सुखा लेते हैं और पकाते हैं। गरम होने से अन्दर का मोम पिघल कर बाहर निकल जाता है। इस प्रकार बने मिट्टी के खोखले साँचे में पिघली हुई धातु भर देते हैं जो कड़ी होने पर मूर्ति का रूप धारण कर लेती है। फिर मिट्टी को हटा देते हैं।

भारतीय कला के इतिहास में सिन्धु घाटी की सभ्यता का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ जिन रूपों की रचना का आरम्भ हुआ था, उनका विकास आगे चलकर भारतीय कला के ऐतिहासिक युगों में हुआ। मूर्त्तिकला में गढ़नशीलता के साथ सजीवता तथा सौन्दर्य की जो

पद्धति सिन्धु सभ्यता की कला में अपनायी गयी थी, उसी की परम्परा आगे चलकर भारतीय मूर्ति कला में विकसित हुई। 1500 ई० पू० के लगभग महाराष्ट्र के दाइमाबाद क्षेत्र में काँसे की ढली हुई बैलगाड़ी प्राप्त हुई है, जो उस युग की अत्यन्त कुशल कारीगरी का नमूना है।

श्री रायकृष्णदास का विचार है कि सिन्धु सभ्यता के टिकरों (मोहरों) पर जो चिन्ह और आकृतियाँ अंकित हैं, उनमें से कुछ ईसवी पूर्व सात-आठ सौ वर्ष से लेकर ईसवी सन् के आरम्भ होने तक हमारे सिक्कों पर बनायी जाती थीं। इस सभ्यता में अकीक पत्थर के मनकों पर जो धारियाँ बनाई जाती थीं उनका प्रयोग भी भारतीय आभूषणों में ईसवी सन् के आरम्भ तक मिला है। सिन्धु की मूर्त्तियों में जो नारी-आभूषण अंकित हैं वे भारतीय नारियों द्वारा पहने जाते रहे हैं। पालथी लगाये ध्यान मुद्रा में जो योगी अथवा पशुपति की आकृति है, उसका विकास आगे चलकर ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध धर्मों की मूर्त्तियों में हुआ है।

## (ख) वैदिक युग की कला

वैदिक युग में भारतवर्ष में अनेक देवी देवताओं की पूजा की जाती थी। उनकी प्रतिमाएँ भी बनती थीं जो अब उपलब्ध नहीं है। उस समय के स्मारकों के अवशेष केवल बिहार के लौरिया-नन्दगढ़ नामक स्थान पर ही मिले हैं। ये प्रायः श्मसानों के रूप में हैं। यहाँ सोने की पत्री पर स्त्री की अंकित आकृति मिली है। इसका आकार 2" × 1" है। यह षट्कोण है और इस पर उल्टी ओर से ठोक कर पत्री को उभार देकर स्त्री की आकृति बनायी गयी है। इस नग्न आकृति में स्त्रीत्व के चिन्हों को बड़ा करके दिखाया गया है जो सम्भवतः उर्वरता के प्रतीक के रूप में कल्पित किये गये हैं। इसे पृथ्वी माता या श्री (लक्ष्मी) की आकृति माना जाता है।

## (ग) शैशुनाक तथा नन्द कला

इसका समय 727 ई० पू० से 325 ई० पू० तक का है। मूर्त्तिकला की दृष्टि से यहीं से ऐतिहासिक काल का आरम्भ होता है। भारत में अब तक ऐतिहासिक काल की जो मूर्त्तियाँ मिली हैं वे मगध के शैशुनाक वंश के कुछ राजाओं की हैं। कुछ पर उनके नाम भी खुदे हैं।

**अजातशत्रु (परखम यक्ष) की मूर्त्ति**—इन मूर्त्तियों में सबसे पुरानी मूर्ति अजातशत्रु की है। यह बुद्ध का समकालीन था। उस समय मृत पूर्वजों की प्रतिमाएँ बनवाने की परम्परा थी, जैसा कि महाकवि भास के ''प्रतिमा नाटकम्'' से ज्ञात होता है। जहाँ ये मूर्त्तियाँ रखी जाती थीं वह स्थान 'देवकुल' कहलाता था। अजातशत्रु की यह मूर्ति मथुरा के समीप परखम नामक गांव में मिली थी। अतः इसे परखम यक्ष भी कहा जाता है। लगभग 9 फुट ऊँची यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। (आकृति-5)

आकृति-5

(8)



सके अतिरिक्त अजातशत्रु के पौत्र अज उदयी तथा उसके पुत्र नन्दिवर्धन की मूर्त्तियाँ
ना के समीप मिली हैं जो अब कलकत्ता संग्रहालय में हैं।

तीनों मूर्त्तियाँ एक ही शैली में हैं तथा इनमें मानवीय आकृतियों की व्यक्तिगत विशेषताओं
न में रखा गया है। इनकी शैली का झुकाव यथार्थता की ओर है। कुछ विद्वानों ने इन्हें
र्ति माना है पर ये देव-योनि मूर्त्तियाँ प्रतीत नहीं होती। इनमें मानवता बहुत अधिक है।

न मूर्त्तियों के अतिरिक्त इसी युग की तीन मूर्तियाँ और भी मिलती हैं जिनमें से एक
र्ति बेसनगर से प्राप्त हुई है जो कलकत्ता संग्रहालय में है। दूसरी स्त्री-प्रतिमा मथुरा
सा देवी के नाम से पूजी जाती है। तीसरी मूर्त्ति पुरुष की है। इसका केवल मस्तक
तक के अंश मिला है। यह भी मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। ये सभी मूर्त्तियाँ पहली
के ही समान हैं जिन्हें भूलवश यक्ष समझा गया है। इनमें से कई मूर्त्तियों पर ओपदार
भी है, जिससे इन्हें मौर्यकालीन भी माना गया है। ये मूर्त्तियाँ अशोक से पहले की हो
हैं।

सी काल में जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ भी बनने लगी थीं।

# 2

# मौर्य काल

**अशोक के स्तम्भ**—मौर्यकाल कलाओं के विकास के लिये बहुत अनुकूल था। मौर्यकाल में वास्तुकला तथा मूर्त्तिकला दोनों की ही उन्नति हुई। चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक इनका विशेष संरक्षक था। उसने देश के अनेक भागों में स्तम्भ निर्मित कराये। इस प्रकार के 13 स्तम्भों का पता चला है। इन पर सुन्दर और चिकनी पालिश है। ये 30 से 40 फीट तक ऊँचे हैं और इन पर अशोक के लेख खुदे हुए हैं। ये स्तम्भ अशोक कालीन मूर्त्तिकला के सर्वश्रेष्ठ उदारहण हैं और विश्व की उत्कृष्ट कला-कृतियों में इनका स्थान है। चार अन्य स्थानों पर भी टूटे हुए अंशों का पता चला है। श्री रायकृष्णदास का अनुमान है कि ऐसे स्तम्भों की संख्या 30 के आस-पास रही होगी। सभी स्तम्भ चुनार के पत्थर के हैं। इनकी पालिश भारतीय कला की एक ऐसी विशेषता है जो संसार भर में अद्वितीय हैं।

ये स्तम्भ दो भागों में बने हैं—1. लाट और 2. परगहा (अर्थात् ऊपरी भाग)। परगहों पर उभार कर एवं कोर कर बनायी गयी अशोक कालीन मूर्त्तिकला के सुन्दर नमूने अंकित हैं। प्रत्येक परगहे के पाँच अंश हैं—(1) इकहरी या दुहरी पतली मेखला जो लाट के ठीक ऊपर आती है। (2) मेखला के ऊपर उल्टे कमल की पंखुड़ियों की आलंकारिक आकृति, जिसे बैठकी कहा गया है। अनेक विद्वान् इसे उल्टा कमल न मान कर घंटाकृति मानते हैं। (3) इस बैठकी के ऊपर एक और छोटा घेरा बना रहता है जिसे कंठा कहा गया है। (4) कंठे के ऊपर गोल या चौखुटी चौकी बनी है जिस पर चारों ओर चक्र, दौड़ते पशु तथा पक्षी आदि अंकित हैं। (5) शीर्ष जहाँ कोई एक या अधिक पशु आसीन दिखाये गये हैं। शीर्ष भाग पर प्राय: सिंह, बैल, अश्व या हाथी का अंकन हुआ है। इन पशुओं के अंकन में तत्कालीन शिल्पियों ने कमाल कर दिखाया है। विशेषकर सिंह प्रतिमा तो इतनी सजीव है कि उसकी तुलना संसार में अन्यत्र दुर्लभ है। मेखला पर प्राय: मनकों और डोरी का उभरा हुआ अलंकरण है। कण्ठा भी डोरी की भाँति लपेटादार या सादा बनाया गया है। चौकी में पर्याप्त कारीगरी दिखायी गयी है। लौरियानन्दगढ़ के स्तम्भ की चौकी पर थोड़े उभारदार उड़ते हंस बने हैं। रामपुरवा के सिंह-स्तम्भ में हंस भी अंकित हैं। इलाहाबाद, संकिसा, तथा रामपुरवा के बैल वाले स्तम्भ पर पंजक, कमल तथा मुकुन्द (Honey Suckle) आदि बने हैं। सारनाथ स्तम्भ की चौकी पर चार चक्र तथा उनके बीच-बीच में अश्व, वृषभ, हाथी तथा सिंह अंकित हैं।

## सारनाथ का सिंह-स्तम्भ (Lion Capital of Sarnath)

अशोक के समस्त स्तम्भों में सारनाथ का स्तम्भ सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसका शिखर भाग इतना सुन्दर और आकर्षक है कि इसे गणतन्त्र भारत के राष्ट्रीय चिन्ह का गौरव प्रदान

किया गया है। सारनाथ के प्राचीन नाम ऋषि पत्तन और मृगदाव थे। यहीं पर बुद्ध ने अपना प्रथम धर्मोपदेश किया था जिससे यह स्थान बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र बना। यह स्तम्भ सम्राट अशोक के शासनकाल में 242 ई० पू० से 232 ई० पू० के मध्य सारनाथ में बुद्ध के प्रथम धर्मोपदेश (धर्मचक्र प्रवर्तन) के स्मारक के रूप में स्थापित किया गया था। इसका परगहा अर्थात् ऊपरी भाग अभी तक ज्यों का त्यों है। चौकी पर चार धर्म चक्र बने हैं और उनके बीच-बीच में घोड़ा, हाथी, सिंह तथा बैल अंकित हैं। ऊपर चार सिंह पीठ मिलाए बड़ी शालीनता से बैठे हैं। ये चारों सिंह अपने सिर के ऊपर धर्म चक्र सँभाले हुए थे जिसके केवल कुछ टुकड़े ही शेष हैं। इस विशाल चक्र का व्यास दो फीट नौ इंच था तथा इसमें 32 अरे थे। नीचे चौकी के चक्रों में 22-22 अरे हैं। शीर्ष भाग के चारों सिंह पीठ मिलाये दृढ़ता से बैठे हैं। चारों दिशाओं में इनके मुख हैं। इनके गठीले अंग सम-विभक्त हैं और कहीं भी भद्दापन या कुरूपता नहीं है। सिंहों की भयानकता इनमें नहीं दिखायी गयी है। इनके लहराते हुए बालों (केसर) की लटें आलंकारिक विधि से दिखायी गयी हैं जो इनके सौन्दर्य की वृद्धि कर रही हैं। चारों सिंह पूरी नाप-तौल से एक समान बनाये गये हैं। पहले इनकी आँखों में मणि लगे थे जो निकल गये हैं। इनकी कला इतनी उत्कृष्ट है कि ये आज ही बने प्रतीत होते हैं। सिंहों की फूली हुई नसें तथा तनी हुई मांस-पेशियाँ भी शौर्य का प्रदर्शन करती हैं। मूँछों के बाल भी बड़ी सावधानी से बनाये गये हैं।

चौकी पर अंकित पशु आकृतियाँ भी अत्यन्त सजीव बन पड़ी हैं। यद्यपि वे सिलीफ द्वारा उभार कर बनायी गयी हैं तथापि उनमें गहन ठोसता का अधिक से अधिक आभास दिया गया है। इसमें वे ऊपरी तल पर पूर्ण वर्तुल प्रतीत होती हैं। (फलक चित्र सं०1)

**सिंह-स्तम्भ की प्रतीकता**—सारनाथ के इस सिंह-स्तम्भ की आकृतियों में प्रतीकता है। चारों दिशाओं की ओर मुख किये बैठे सिंह शक्ति तथा शौर्य के प्रतीक हैं जो मौर्य साम्राज्य के चारों दिशाओं में विस्तार और प्रताप के सूचक हैं। सिंहों के सिर पर चक्र है अर्थात् राज्य शक्ति ने धर्म को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया है और चक्र के रूप में उसके प्रचार का व्रत लिया है। नीचे चौकी पर चार चक्र और चार पशु हैं अर्थात् धर्म की दृष्टि में सभी जीव समान और निर्भय हैं। कमल सृष्टि का प्रतीक है।

कुछ विद्वानों ने इसको नक्षत्र विद्या का भी प्रतीक माना है और इसे ब्रह्माण्ड, सूर्य, चार दिशाओं, चार मुख्य ऋतुओं एवं काल-चक्र से सम्बन्धित किया है।

**विदेशी प्रभाव**—अशोक स्तम्भों की कला पर कुछ विदेशी विद्वानों ने विदेशी प्रभाव माना है। उनका मत है कि इनके परगहों पर जो आकृतियाँ अंकित हैं वे ईरानी कला से आयी हैं। किन्तु स्वयं ईरानी कला में ये अभिप्राय एशिया माइनर के देशों से आये थे जिनका भारतवर्ष से बहुत पुराना सम्बन्ध था। यही नहीं बल्कि वहाँ ई० पू० 15 वीं शती में आर्यों के कई उपनिवेश बन चुके थे जिनमें खत्ती, मितानी और केसाई मुख्य थे। इन जातियों के राजाओं के नाम भारतीय आर्य भाषा के हैं अतः यह बहुत सम्भव है कि ये प्रभाव सीधे एशिया माइनर से ही भारत में आये हों। वास्तु कला के प्राचीन आचार्यों में मय का नाम बहुत प्रसिद्ध है। मय असुर (अर्थात् असीरिया का निवासी) था जो एशिया माइनर में है। इसी प्रकार कुछ अन्य यूरोपीय विद्वान इस पर यूनानी हैलेनिस्टिक कला का प्रभाव मानते हैं, पर उनका मत भी निराधार

है। अशोक कालीन स्तम्भों के पशुओं में जो सजीवता है वह भारतीय कला
से ही मिलती है। उसके लिये किसी अन्य देश से प्रेरणा लेने की आवश्यकता
पर जो चमकदार पॉलिश है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

**स्तम्भों का समय**—ऊपर वर्णित स्तम्भों को प्रायः अशोक स्तम्भ कहा जाता है, ये सभी अशोक द्वारा बनवाये हुए नहीं हैं, कुछ पहले के भी हैं। अशोक ने सप्तम अभिलेख में कहा है कि जहाँ पहले के स्तम्भ विद्यमान हैं वहाँ भी ये अभिलेख... इससे स्पष्ट है कि कुछ स्थानों पर अशोक से पूर्व के स्तम्भ थे। कुछ स्तम्भों की... इतनी सुन्दर भी नहीं है जितनी अशोक कालीन स्तम्भों की है। कुछ स्तम्भों पर... खुदे हुए हैं। किसी-किसी स्थान पर दो स्तम्भ हैं जैसे रामपुरवा, काशी तथा... इन सब बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि कुछ स्तम्भ अशोक से पूर्व के... निगलीवा, सारनाथ, बुद्धगया तथा साँची के स्तम्भ निश्चयपूर्वक अशोक युग...

अशोक स्तम्भों की कारीगरी में कुछ ऐसे अभिप्राय अंकित किये गये हैं जो... थे। जैसे पंखदार सिंह, पंखदार वृषभ, नर-मकर, नर-अश्व, मेष-मकर, गज-मकर, सिंह-नारी, गरुड़-सिंह, मनुष्य के धड़ वाले पक्षी तथा घट अथवा कलश में से... कमल की बेल। घट तथा कमल वल्लरी का यह अभिप्राय आगे चलकर इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि भारतवर्ष की वास्तुकला में इसका निरन्तर अंकन होता रहा तथा सिरदलों एवं द्वार-पक्षों आदि की सजावट का यह एक प्रमुख साधन रहा।

**मौर्यकालीन स्तूप**—एक अनुश्रुति के अनुसार अशोक ने तीन वर्ष में चौरासी... का निर्माण कराया था। साँची का स्तूप इनमें से एक है। (इसके चारों ओर... में शुंग काल में बने)। किन्तु इनमें मूर्त्तियाँ अंकित नहीं है।

**मौर्य कालीन मूर्त्तियाँ**—मौर्य शासन काल में स्तूपों के निर्माण के साथ-साथ... शैली का भी विशेष विकास हुआ। भूरे रंग के दानेदार बलुहे पत्थर की मानवा... जिन पर दर्पण के समान चमकदार पालिश की गयी है, सम्राट अशोक के शा... निर्मित हुईं। इस युग में जो अनेक सुन्दर मूर्त्तियाँ बनीं उनके कुछ उदाहरण अभी भी...

**दीदारगंज यक्षी**—मौर्य काल के अविशिष्ट नमूनों में सबसे सुन्दर मूर्त्ति... है। इसके हाथ में चामर (चँवर) है जिसके कारण इसे चामर ग्राहिणी कहा... बिहार प्रदेश में पटना के निकट दीदारगंज नामक स्थान पर मिली थी जिसके... दीदारगंज यक्षी भी कहते हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली के निदेशक डॉ० लक्ष्मन... का मत है कि यह भारतीय कला की "मौनालिसा" है। अपूर्व सौन्दर्य की ऐसी... इसके पूर्व या पश्चात् कभी नहीं गढ़ी गई। यह अशोक कालीन मूर्तिकला का... नमूना है। सुघर मुख मण्डल, अंग-प्रत्यंग की सुडौल बनावट तथा दर्पण जैसी... पॉलिश के कारण यह मूर्ति दर्शनीय बन पड़ी है। यह मूर्त्ति चुनार के गुलाबी... में से कोर कर बनायी गयी है। ऊँचाई सामान्य से कुछ अधिक है। मुख पर कि... है। स्तनों का पूर्ण उभार शारीरिक पुष्टता को प्रकट करता है। गहरी नाभि के... की रेखाएँ हैं तथा अधोभाग में झीने वस्त्र की सिकुड़ने बड़ी कुशलता से अंकित हैं। शिर, ग्रीवा, वक्ष स्थल, हाथों, कमर तथा पैरों में सुन्दर आभूषण दिखाये गये हैं।

आकृति-6

यह किसी राजभवन या देवालय में भित्ति के निकट रखी जाने के लिए तथा किसी देवता या राजा की सेविका के रूप में बनायी गयी थी। इसका पीछे का भाग प्रायः अनगढ़ है। इन सभी विशेषताओं के कारण इस मूर्त्ति का भारतीय कला में विशेष स्थान है। श्री आनन्दकुमार स्वामी के शब्दों में "अपना अमित भार दृढ़तापूर्वक धरती पर डाले हुए ये मानवीय छवियाँ भौतिक ऊर्जा की प्रत्यक्ष और स्वीकृति-मूलक अभिव्यक्ति हैं। बिना प्रश्न और बिना विश्लेषण के यहाँ जीवन की स्वीकृति है। हाड़-मांस का यहाँ आदर्शीकरण नहीं हुआ है। सुन्दर या अद्भुत तत्वों या परिष्कार का यहाँ लेश भी नहीं है।" **(आकृति 6)**

अशोक युग की मूर्त्तिकला में कहीं भी बेडौलपन या भद्दापन नहीं है। उस समय की कड़े पत्थरों की तथा मुलायम गोरा पत्थर की छोटी-छोटी गोल चकियाँ मिलती हैं जिनमें से किसी-किसी के बीच में छेद हैं। इन पर बहुत सुन्दर उभरी हुई नक्काशी में स्त्रियाँ या पशु-पक्षियों आदि की आकृतियाँ बनी हैं। ऐसी ही एक चकिया पर मोरनी बनी है। सम्भवतः ये कान का आभूषण हैं।

ोक के पश्चात् के मौर्य शासकों के समय में भी मूर्त्तियों आदि का निर्माण होता क जैन मूर्त्तियाँ भी बनी जिन पर चमकदार पॉलिश है। पिछले युग के मौर्य शासकों पूजा-स्थलों का निर्माण कराया था पर इनके अवशेष नहीं मिलते। पत्थर की मूर्त्तियों रिक्त इस युग की अनेक मिट्टी की मूर्त्तियाँ भी मिली हैं। इन्हें अन्तिम मौर्यकाल अथवा क शुंगकाल की माना जाता है।

र्युग के अधिकांश शिल्प में चुनार के पत्थर का प्रयोग हुआ है। अतः इस युग की मध्यदेशीय शैली के नाम से पुकारा गया है। मौर्य युग में जिस बौद्ध वास्तु कला स हुआ वह ब्राह्मण धर्म के मन्दिर के वास्तु से पूर्णतः भिन्न है। फिर भी मन्दिर दीवारों तथा तोरणों आदि पर जिस प्रकार प्रेम क्रीड़ा करती अप्सराओं, गन्धर्व-मिथुनों, और यक्षों आदि की आकृतियाँ अंकित करने का विधान है उसी प्रकार बौद्ध तथा जैन ला में भी इनका प्रयोग हुआ, यद्यपि इन दोनों ही धर्मों के सिद्धान्तानुसार इनका अंकन ना चाहिए था। बुद्धगया, मथुरा तथा नागार्जुन कौंडा आदि के बौद्ध एवं जैन स्तूपों च्य इसका उदाहरण है।

स प्रकार इस युग की कला में घनत्व तथा विस्तार दोनों ओर विकास हुआ। आध्यात्मिक अभिव्यक्ति से पहले स्वस्थ भौतिकता प्रकट हुई।

# 3

# शुंग काल

शुंग राजाओं का काल 188 ई० पू० से 30 ई० पू० तक माना जाता है।

इस युग में बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण तीनों धर्मों से सम्बन्धित कलाकृतियों की रचना हुई जो प्रायः स्तूपों, गुफाओं तथा मन्दिरों के शिल्प के रूप में उपलब्ध हैं। इनके बाहरी तथा आन्तरिक भागों, स्तम्भों, मण्डपों, स्तूपों के तोरणों तथा वेदिकाओं और शिखरों में स्थान-स्थान पर मूर्त्तियों द्वारा अलंकरण किये गये तथा पूजा के लिए प्रतिमाओं का निर्माण किया गया। इस युग के जो प्रसिद्ध कला-केन्द्र तथा कलाकृतियाँ अवशिष्ट हैं उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

आकृति—7

**साँची—** साँची का स्तूप अशोक ने बनवाया था। यह मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के निकट है। इसके चारों ओर परिक्रमा की वेदिका तथा चार तोरण द्वारा शुंग काल में सातवाहन नरेशों द्वारा बनवाये गये। तोरणों के निर्माण में नीचे दोनों ओर एक-एक चौपहलू खम्भा है। खम्भों पर चौदह फीट की ऊँचाई से ऊपर तीन मेहराब (बड़ेरियाँ) हैं। इनके ऊपर बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चिन्ह—सिंह, हाथी, धर्मचक्र, यक्ष—आदि बने हैं। तोरण की कुल ऊँचाई चौंतीस फीट है। तोरणों पर बुद्ध का जीवन, पूर्व जन्मों की कथाओं आदि के दृश्य उभरे हुए शिल्प (रिलीफ) में अंकित हैं। किनारों पर हाथी, मोर, पंखदार सिंह, बैल, ऊँट तथा हिरन के जोड़े, जिनके मुँह विपरीत दिशाओं में हैं, बने हैं। स्तम्भों के निचले अंशों में द्वार-रक्षक यक्ष बने हैं। बड़ेरियों की सूचियों के बाहरी भागों में हाथियों की मूर्त्तियाँ हैं। इनके भार को सम्भालने के लिए खम्भों मे से तिरछी यक्षी आकृतियाँ हैं जो अपने हाथ से ऊपर का भार सम्भाले हुए दिखायी गयी हैं। इन तोरणों में उस काल का लोक-जीवन बड़े ही सजीव रूप में प्रतिबिम्बित हुआ है। कहीं बौने अंकित हैं, कहीं बोधिवृक्ष का अभिवादन करने के लिए सिंह, हाथी, महिष, मृग तथा नाग आदि एकत्रित हो रहे हैं, कहीं हाथियों का दल कमल पुष्प लिए चला आ रहा है, कही षड्दन्त जातक की कथा चित्रित है—जब अपने पूर्व जन्म में बुद्ध छः दाँत वाले हाथी थे। कहीं बुद्ध के घर से निकलने का दृश्य है। कही मुनि आश्रम और कहीं नगर मे राजा और प्रजा की भीड़ दिखायी गयी है। स्थान-स्थान पर गज-लक्ष्मी, कमल, गौ-मूत्रिका

आदि के अभिप्राय अंकित हैं। यहाँ बुद्ध के स्थान पर स्वस्तिक, कमल तथा चरण चिन्हों आदि को ही दिखाया गया है। इस समय तक बुद्ध की मूर्त्ति नहीं बनाई गयी थी। इन सबमें स्तम्भ में लगी तथा ऊपरी भार को सम्भालती हुई आम की डाल पकड़े यक्षी की तिरछी मूर्त्ति बहुत सुन्दर है। अपनी सहजता, माँसलता तथा संसार के प्रति सामंजस्य भाव की अभिव्यक्ति ने इस मूर्त्ति को भारतीय शिल्प का एक सुन्दर उदाहरण बना दिया है (फलक चित्र स० 2)। इन यक्षियों को वृक्षों की देवी माना जाता था। कहीं-कहीं इनका नीचे का आधा शरीर वृक्ष के रूप में तथा ऊपर का आधा शरीर नारी के रूप में भी अंकित हुआ है किन्तु अधिकांश में इन्हें वृक्षों के निकट या नीचे ही दिखाया गया है।

साँची की तक्षण कला पूरी तरह गोलाई लिए हुए नहीं है। जो चित्र उभरी हुई नक्काशी में तोरणों तथा वेदिका-स्तम्भों आदि पर बने हैं वे काष्ठ-शिल्प जैसा किंचित् समतलता का प्रभाव लिए हुए हैं। चारों ओर से देखी जाने वाली आकृतियों में भी कहीं-कहीं सपाटपन का मिश्रण है। इसका कारण यह है कि इनकी रचना हाथी दाँत के शिल्पियों के संघ द्वारा की गयी थी। कला-इतिहासकारों ने भी साँची के शिल्प की खुदाई का आदर्श लकड़ी या विशेषत: हाथीदाँत की नक्काशी स्वीकार किया है।

**भरहुत**—शुंगकाल की मूर्त्तिकला में साँची के बाद भरहुत का महत्व है। यह स्थान इलाहाबाद तथा जबलपुर के मध्य नागोद राज्य में है। सन् 1873 ई० में एक अंग्रेज जनरल कनिंघम ने यहाँ एक विशाल स्तूप का पता लगाया था। इसका बहुत-सा अंश तो स्थानीय निवासियों ने अपने प्रयोग में ले लिया था, जो कुछ बचा था उसको खुदाई के द्वारा भूमि में से निकाल कर संग्रहालयों में सुरक्षित कर दिया गया है।

इस स्तूप के चारों ओर की बाड़ (वेदिका) बहुत बड़ी थी। लगभग सात फुट एक इंच ऊँची इस बाड़ के प्रत्येक अंश पर बौद्ध धर्म के चित्र, अलंकरण, यक्षियाँ तथा देव-योनि आकृतियाँ आदि बने थे। जनरल कनिंघम ने भरहुत के शिल्प का जो विवरण दिया है उसके अनुसार यहाँ निम्न आकृतियाँ प्रमुख हैं–

(1) चार घोड़ों के रथ पर बुद्ध के दर्शनों को जाते हुए कोसल नरेश प्रसेनजित की सवारी का दृश्य।

(2) हाथी पर आरुढ़ होकर बुद्ध-दर्शन को जाते हुए मगध नरेश अजातशत्रु की सवारी का दृश्य।

(3) देवलोक में बुद्ध के उष्णीय की पूजा।

(4) नागराज ऐरावत द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा।

(5) जेतवन-दान का दृश्य।

(6) मृग जातक (फलक चित्र स० 3)

(7) लगभग चालीस यक्ष-यक्षियों, देवता तथा नागराज की बड़ी मूर्त्तियाँ। दोहद के दृश्य।

(8) पशुओं, पक्षियों तथा वृक्षों की आकृतियाँ।

(9) हास्य के कुछ दृश्य, जैसे एक स्थान पर बन्दरों का एक दल एक हाथी को गाजे-बाजे से लिये जा रहा है। एक अन्य दृश्य में एक पुरुष का दाँत बड़े भारी संड़ासे से उखाड़ा जा

रहा है जिसे एक हाथी खींच रहा है।

भरहुत के शिल्प में भी बुद्ध की आकृति नहीं मिलती। जहाँ उनका प्रसंग आया है वहाँ चरण-चिन्ह, छत्र, चक्र, पादुका अथवा आसन आदि से उनका बोध कराया गया है।

भरहुत की कला में साँची की अपेक्षा रुखापन है। यह लोक कलाओं के प्रभाव के कारण है। शिल्प में चुनार जैसे लाल रवादार पत्थर का ही प्रयोग हुआ है। सांची की कला में जहाँ मौर्य कालीन विशेषताएँ अवशिष्ट हैं वहाँ भरहुत की कला में वे नहीं हैं। भरहुत की यह विशेषता मथुरा, बेसनगर, भीटा, बुद्ध गया, सारनाथ तथा कौशाम्बी आदि की कला में भी है।

भरहुत के वेदिका-स्तम्भों का एक प्रिय अभिप्राय 'दोहद' है। प्राचीन भारत में यह धारणा प्रचलित थी कि सुन्दर स्त्री के पदाघात से वृक्ष फूल उठता है। इस वर्ग में कुछ विशेष वृक्ष ही रखे गये थे जिनमें अशोक प्रमुख था। गर्भिणी स्त्रियों की इच्छा भी इन वृक्षों के समीप जाने की होती थी। इस इच्छा को ही 'दोहद' कहा गया है। भरहुत शिल्प में दोहद के दृश्यों में कोई स्त्री अथवा यक्षी किसी वृक्ष का आलिंगन करती दिखाई गई है। इनमें शाल-भंजिका मुद्रा भी अंकित की गई है।

भरहुत की कला में एक-रूपता नहीं है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि भरहुत के तोरणों तथा वेदिकाओं को अलंकृत करने का कार्य कई शताब्दियों में सम्पन्न हुआ तथा इसमें भारत के भिन्न-भिन्न कलाकारों ने कार्य किया। अनेक आकृतियाँ ऐसी हैं जिनमें समतलता अधिक है और मांसलता अथवा गोलाई का प्रभाव नहीं है। आकृतियों की मुद्राएँ काल्पनिक हैं और उनके हाथ-पैरों की स्थितियाँ स्पष्टता से दिखाने के लिए कुछ बदल दी गयी हैं।

जिन आकृतियों में अधिक उभार दिखाया गया है उनमें भी पूर्ण गोलाई तथा गढ़नशीलता नहीं। आकृतियाँ प्रायः स्मृति से बनाई गयी हैं। नारी आकृतियों के उत्पादक अंग जैसे नितम्ब तथा स्तन भारी और बड़े हैं। रत्नों और आभूषणों की कठोरता के नीचे मांसल शरीर का प्रभाव दिया गया है। फिर भी मानवाकृति शिल्प का रूप आरम्भिक जैसा है। वस्त्रों की सिकुड़नें भी बिल्कुल सीधी, लम्बी ओर समानान्तर अंकित की गयी हैं। आभूषणों को बड़े परिश्रम से बनाया गया है। सभी आकृतियाँ प्रायः उभरे हुए शिल्प (रिलीफ) के समान हैं। यहीं से यक्षियों की आकृति त्रिभंग मुद्रा में मिलने लगती है अर्थात् शरीर में दो स्थानों पर मोड़ होता है जिससे शरीर तीन दिशाओं में मुड़ा हुआ अर्थात् 'त्रिभंग' हो जाता है।

**बुद्ध गया के महा बोधिमन्दिर की वेदिका**—यह मन्दिर कई युगों में बना था। इसकी वेदिका भरहुत की वेदिका के ही समान थी। अन्तर केवल इतना ही था कि भरहुत की वेदिका गोल घेरा बनाती थी, और यह चौकोर घेरा बनाती थी। यह 145 फीट लम्बे तथा 108 फीट चौड़े आंगन के चारों ओर थी। वेदिका के स्तम्भों तथा सूचियों पर बाहर की ओर अलंकृत बेलें और गुच्छे हैं तथा अन्दर की ओर पशुओं या कीर्तिमुखों की आकृतियाँ बनी हैं। सूचियों पर कमल के पुष्पों के मध्य मनुष्यों के चेहरे बने हैं। वेदिका-स्तम्भों पर बुद्ध-जीवन के दृश्य भी उत्कीर्ण हैं। सूर्य तथा इन्द्र भी अंकित हैं। इनकी शैली भरहुत के ही समान है किन्तु आकृतियाँ भरहुत की अपेक्षा अधिक गहरी और मांसल हैं।

**उड़ीसा की जैन गुफाएँ**—उड़ीसा के उदयगिरि और खण्डगिरि में इस युग की लगभग

एक सौ जैन गुफाएँ हैं जिनमें मूर्त्तियाँ भी हैं। इनमें हाथी गुम्फा, मंचपुरी गुम्फा, अनन्त गुम्फा तथा रानी गुम्फा अधिक महत्वपूर्ण हैं।

सबसे पुरानी हाथी गुम्फा है जो उदयगिरि में है। इसमें कलिंग के राजा खारवेल का 157-56 ई० पू० का एक शिलालेख हैं। मंचपुरी गुम्फा दो मंजिली है। नीचे के बरामदे में कुछ उभरी हुई आकृतियाँ हैं, जिनका शिल्प भरहुत से अधिक विकसित है। अनन्त गुम्फा में गजलक्ष्मी, अश्व-रथ पर आरूढ़ सूर्य, पीछे चन्द्रमा और तारागण, हाथी, वेदिका और वृक्ष, तथा सर्प आदि की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। रानी गुम्फा सबसे अधिक अलंकृत है। यह दो मंजिली है। इसके द्वारा पर मूर्त्तियों का एक लम्बा लट्ठा है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों यह एक साथ ही चित्र और काष्ठ पर की हुई नक्काशी है। उड़ीसा में आज भी ऐसा काम होता है जिस पर रंग भी लगाये जाते हैं।

रानी गुम्फा की ऊपरी मंजिल तथा नीचे की मंजिल के शिल्प में भिन्नता है। नीचे की आकृतियाँ अधिक रूखी और भद्दी लगती हैं। ऊपर की मंजिल में सिंह पर सवार एक व्यक्ति तथा यवन सैनिक वेश में एक द्वारपाल की आकृति है। ये दोनों ही पश्चिमी एशिया का प्रभाव व्यक्त करते हैं। नीचे का द्वारपाल पूर्णतः भारतीय है।

उक्त गुफाओं के अतिरिक्त उड़ीसा में गणेश गुम्फा, जय-विजय गुम्फा तथा अलकापुरी गुम्फाओं में भी शिल्प के कुछ उदाहरण मिल जाते हैं।

**ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित मूर्त्तियाँ**—शुंग राजा ब्राह्मण थे अतः उनके शासन काल में बौद्ध तथा जैन कला के साथ-साथ ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित कला की भी उन्नति हुई। ब्राह्मणों में उस समय मूर्त्ति-पूजा भली-भाँति प्रचलित थी। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान पंतजलि ने शिव, स्कन्द और विशाख की मूर्त्तियों की रचना तथा विक्रय और कृष्णलीला के चित्रों की प्रदर्शनी की चर्चा की है। इस युग का एक पंच मुखी शिवलिंग भीटा में मिला है। एक अन्य शिवलिंग दक्षिण के गुडिमल्लमू नामक स्थान पर भी प्राप्त हुआ है। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय शिव पूजा प्रचलित थी। उस समय शिखर वाले मन्दिरों का निर्माण भी प्रारम्भ हो गया था।

**अन्य गुफा-मन्दिर**—इस युग में पहाड़ों को काटकर गुफा मन्दिरों की रचना कुछ अन्य स्थानों पर भी हुई जिनमें भाजा, पीतलखोरा, कोंडाना, वेदसा, कार्ली, अजन्ता तथा नासिक प्रमुख हैं। सभी स्थान बौद्ध धर्म से सम्बन्धित रहे हैं। इनमें मुख्यतः पूजा के स्थल ''चैत्य'' हैं तथा बौद्ध भिक्षुओं के रहने के स्थान ''विहार'' कहलाते हैं। ऊपर बताये गये गुफा-मन्दिरों में से अनेक में शुंग कालीन शिल्प के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। नासिक में दरवाजों के अलंकरण तथा द्वारापाल, भाजा में यक्ष, इन्द्र, सूर्य आदि का अंकन है। सूर्य चार घोड़ों के रथ पर बैठे अन्धकार रूपी राक्षस को पहियों से कुचल रहे हैं। ऐरावत पर चढ़े इन्द्र के सामने एक अप्सरा नृत्य कर रही है। एक फलक पर पूजा हेतु जाते हुए नर्तनशील दम्पत्ति का अंकन है। कार्ली का शिल्प इन सबसे अधिक विकसित और उत्कृष्ट है। ऊपर की छत को साधने के लिये हाथियों की पंक्ति बनायी गयी है। प्रत्येक हाथी पर दो पुरूष या स्त्रियाँ आरूढ़ हैं। ये आकृतियाँ स्तम्भों में बहुत गहरी खोदी गयी हैं और परस्पर सटी हुई हैं जिससे इनकी एक पंक्ति का आभास होता है। गुप्त काल में यहाँ बुद्ध की मूर्त्ति तथा अन्य आकृतियाँ भी बनायी गयी।

**मिट्टी की मूर्त्तियाँ**—शुंग काल में मिट्टी की मूर्त्तियाँ, खिलौने तथा टिकरे भी बहुतायत से बने। ये सम्पूर्ण भारत में बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं। इनमें आकृतियों की वही शैली है जो मूर्त्ति तथा भवन कला में थी। इस प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण टिकरा कौशाम्बी से प्राप्त हुआ है जिस पर चलने की मुद्रा में एक हाथी बना है। इसे एक स्त्री चला रही है। उसके पीछे एक पुरुष सुर मण्डल नामक बाजा लिये बैठा है। पीछे एक और व्यक्ति बैठा है जो थैली को उल्टा खोलकर मुद्राएँ बिखेरता जा रहा है जिन्हें दो व्यक्ति बटोर रहे हैं। विद्वानों का विचार है कि यह वत्सराज उदयन (ई० पू० 6 ठी शती) के द्वारा अवन्ती के राजा चण्ड महासेन की पुत्री वासवदत्ता के हरण की कथा से सम्बन्धित है। अपनी हथिनी भद्रवती को वासवदत्ता स्वयं चला रही है। पीछे सुरमण्डल हाथ में लिये उदयन बैठा है और सबके पीछे उदयन का सखा और विदूषक वसन्तक है।

प्रागैतिहासिक काल से शुंगकाल तक का समय भारतीय मूर्त्तिकला का आरम्भिक युग है जब कि इसकी नींव रखी गयी और आकृति रचना की पद्धतियाँ निश्चित हुई। इन्हीं पद्धतियों पर आगे चल कर कुषाण-सातवाहन काल में रूपों, वस्त्रों तथा अलंकारों आदि में यूनान, रोम, मध्य तथा पश्चिमी एशिया की कला-परम्पराओं का प्रभाव पड़ा। इन सबसे कला का एक ऐसा आधार बन गया जिस पर कुषाण काल में गान्धार शैली का विकास हुआ।

# 4

# कुषाण-सातवाहन युग

यह युग 50 ई० पू० से 300 ई० तक रहा है। 50 ई० पू० के लगभग शकों का दूसरा प्रवाह मध्य एशिया से भारत आया। इनमें से एक सरदार कुषाण था जिसने धीरे-धीरे उत्तरी भारत पर अपना अधिकार कर लिया। वह बौद्ध था। उसका पुत्र विम शैव धर्म का अनुयायी था। विम का पुत्र कनिष्क हुआ। उसने अपना राज्य मध्य प्रदेश और मगध तक बढ़ा लिया तथा पेशावर को अपनी राजधानी बनाया। वह बौद्ध था और उसके समय बौद्ध धर्म तथा कलाओं की बहुत उन्नति हुई।

इस समय तक ब्राह्मण धर्म के प्रभाव से बुद्ध को भी महापुरुष की बजाय देवता मानना आरम्भ हो गया था। बोधिसत्वों को भी बुद्ध के पूर्व-जन्मों का अवतार माना गया। अनेक नये बौद्ध देवी-देवताओं की भी कल्पना हुई। इस प्रकार बौद्ध धर्म का रूप ही बदल गया और उसमें मूर्त्ति पूजा प्रचलित हुई। बौद्धों में पूजा का समर्थक सम्प्रदाय ''महायान'' कहलाया। कनिष्क इसी महायान सम्प्रदाय का अनुयायी था।

## (क) गान्धार शैली

यह शैली अफगानिस्तान और भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त के क्षेत्रों में फली-फूली थी। इस कला के विषय तो बौद्ध हैं पर शैली पर प्रबल यूनानी प्रभाव है। सभी मूर्तियों नीले या काले सलेटी पत्थर की हैं। कुछ चूने-मसाले से भी बनी हैं। इन पर कोई लेख नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि गान्धार शैली की इन मूर्त्तियों का न तो इस काल से पहले कोई विकास का चिन्ह मिला है और न ही इस काल के पश्चात् इनकी परम्परा मिलती है। इस शैली में बुद्ध की प्रतिमाओं का सबसे अधिक संख्या में निर्माण हुआ है।

**बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्त्तियाँ**—बुद्ध की प्रतिमा के गान्धार की कला शैली में निर्माण के विषय में दो मत हैं। एक मत फूशे, विन्सेण्ट स्थिम तथा सर जान मार्शल आदि विद्वानों का है जिनके अनुसार इस पर भारतीय प्रभाव नहीं है और बुद्ध मूर्त्ति की सर्व प्रथम कल्पना गान्धार में हुई। इनके विचार से गान्धार शैली का ही प्रभाव आगे भारतीय मूर्त्तिकला पर पड़ा और भारतीय मूर्तिकारों ने बुद्ध मूर्त्ति इसी के अनुकरण पर बनायी। गान्धार शैली के बुद्ध की मुखाकृति यूनानी देवता अपोलो के मुख के समान है और शरीर का ऊपरी वस्त्र भी ग्रीक वस्त्र की पद्धति पर बना है। लहराते हुए केश, मुख की कोमल भंगिमा, आभामण्डल का घेरा तथा सिकुड़नों को बनाने की पद्धति आदि सब पाश्चात्य प्रभाव के सूचक हैं। यह प्रभाव यूनान अथवा रोम की कला के उदाहरणों की अनुकृति का सूचक है। इन आलोचकों का यह भी कथन है कि बुद्ध का शारीरिक चित्रण भारतीय कला में नहीं होता था अतः भारतीय कलाकारों ने बुद्ध मूर्त्ति की कल्पना नहीं की। गान्धार कला के शिल्पी विदेशी थे। इन्होंने

# 10

# भारतीय मूर्त्तिकला की प्रमुख विशेषताएँ

भारतीय मूर्त्तिकला में भारतवर्ष की युग-युग की संस्कृति और आध्यात्मिकता निहित रही है। इसका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक प्रकाश को प्रस्फुटित करना रहा है। यहाँ की अधिकांश मूर्त्तियों में देवी-देवताओं के उदात्त स्वरूप का अंकन हुआ है। इस प्रकार यह शिल्प भारतीय समाज की रुचियों, प्रवृत्तियों और आचार-विचार का जीता-जागता प्रतिबिम्ब है।

भारतीय मूर्त्तियों पर विचार करते समय उपासना की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ भी सामने आती है। हिन्दू, जैन तथा बौद्ध धर्म के अतिरिक्त शैव, वैष्णव, शाक्त आदि उपभेदों का भी स्वरूप भारतीय मूर्त्तिकला में स्पष्ट हुआ है।

भारत वर्ष में मूर्त्तियों की पहली आवश्यकता धार्मिक पूजा-पाठ के लिये उत्पन्न हुई थी। इसका प्राचीनतम रूप प्राकृतिक पदार्थों की पूजा था, जैसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश आदि। इनके अतिरिक्त पशु, वृक्ष, पक्षी, नदी, पर्वत आदि की पूजा भी आदिम युग से ही प्रचलित रही है। आर्यों तथा अनार्यों सभी में इस प्रकार की पूजा प्रचलित थी जिसने आगे चल कर बौद्ध कला को विशेष समृद्ध किया।

भारतीय प्रतिमा-शिल्प की आधार शिला पूजा परम्परा और ध्यान हैं। आरम्भ में प्रकृति के भयावह तथा विमुग्धकारी रूपों ने मनुष्य में कौतूहल के साथ-साथ समर्पण एवं भक्ति की भावना का विकास किया। प्रकृति के यही रूप आगे चलकर देवों में बदल गये। मनुष्य ने पहले पशु अथवा पक्षी के रूप में प्राकृतिक शक्तियों की कल्पना की, फिर उसने अर्द्ध-पशु अर्द्ध मानव रूप कल्पित किये। जब मनुष्य ने अपनी शक्ति को पहचाना तो उसने देवी-देवताओं की भी मानुषी रूपों में कल्पना कर डाली और पशुओं को उनका वाहन बना दिया।

इनके अतिरिक्त प्राचीन भारत में यक्ष-पूजा भी प्रचलित थी। प्राचीन युग की जो अनेक यक्ष-यक्षी प्रतिमाएँ परखम, पटना में दीदारगंज, बेसनगर, देवरिया आदि में मिली हैं उनसे यह सिद्ध होता है। यक्ष-पूजा की परम्परा नाग-पूजा (आकृति 20) के ही समान अनार्य जातियों में प्रचलित थी। नाग-पूजा का विकास आगे चलकर विभिन्न धर्मों के संयोग से कृष्ण के भाई बलराम की शेषावतार रूप में कल्पना तथा आभा मण्डल में शेषनाग के फनों के अंकन वाली मूर्त्तियों में, शेषशायी विष्णु की मूर्त्तियों में, जैन प्रतिमाओं में धरणेन्द्र के रूप में तथा बौद्ध धर्म में मुचलिन्द नाग के रूप में हुआ। ये सभी नाग आकृतियाँ फन फैलाये आभा-मण्डल की भाँति अंकित की गयी हैं।

आकृति—20

पशुओं से सम्बन्धित पहले देवता पशुपति हैं जिनकी एक मुहर सिन्धु सभ्यता में प्राप्त हुई है। यह पालथी लगाये ध्यान की मुद्रा में हैं। इससे एक ओर पशुपति के रूप में शिव की मूर्ति का विकास हुआ जिसमें नन्दी को शिव के वाहन के रूप में दिखाया जाता है। शिव मन्दिरों में नन्दी की आकृति अलग से भी बनायी जाने लगी। दक्षिण भारत के कई स्थानों पर नंदी की विशाल प्रतिमाएँ बनीं।

ध्यानावस्थित मुद्रा ने आगे चलकर तपस्या में लीन जैन तथा बौद्ध प्रतिमाओं को प्रेरणा दी। जैन तीर्थंकारों की पालथी लगाये तपस्या में रत मूर्तियाँ निरन्तर बनती रही हैं। बुद्ध की बैठी हुई प्रतिमाएँ तप के साथ-साथ उपदेश करते हुए भी बनायी गयी। इनमें सारनाथ की धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। शैव धर्म से सम्बन्धित शिव की अन्य प्रतिमाओं में शिव-पार्वती विवाह, अर्द्धनारीश्वर, त्रिमूर्ति तथा ताण्डव की मुद्राएँ अधिक प्रसिद्ध हैं।

उर्वरता के प्रतीकों के रूप में नारी के प्रजनन अंगों की पूजा अत्यन्त प्राचीन है। आगे चलकर नारी आकृति को समृद्धि के प्रतीक के रूप में कल्पित किया गया। स्वस्थ शरीर, उन्नत उरोज, क्षीण कटि तथा पीन नितम्बों और पुष्ट जंघाओं सहित पूर्ण-यौवना नारी की मातृत्व के प्रतीक के रूप में कल्पना की गयी। आरम्भ में यह मातृ देवी, श्री अथवा लक्ष्मी मानी गयी। उसके पश्चात् कला में नारी आकृति का यह आदर्श बन गया और सर्वत्र अंकित किया गया। इसी के आधार पर यक्षियों, सुर-सुन्दरियों, मोहिनी तथा नर्तकियों आदि की प्रतिमाएँ गढ़ी गयीं। मातृत्व के रूप में कुमार कार्तिकेय सहित पार्वती तथा शिशु सहित हारीती की प्रतिमाएँ बनीं।

आरम्भिक यक्ष मूर्त्तियाँ खड़ी हुई सम्मुख मुद्रा में हैं लक्ष्मी की मूर्त्ति भी इसी प्रकार की है। बुद्ध, बोधिसत्वों, बलराम तथा विष्णु आदि की प्रतिमाएँ भी इसी प्रकार को खड़ी स्थितियों में बनी हैं। इन्हें "स्थानक" मूर्त्तियाँ कहते हैं। बौद्ध तथा हिन्दू प्रतिमाएँ वरद आदि मुद्राओं में भी हैं अथवा कोई आयुध आदि हाथ में लिये भी हैं, किन्तु जैन प्रतिमाएँ ध्यानावस्थित तीर्थंकरों की ही हैं। भक्तों अथवा दर्शकों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है।

शक्ति के उपासकों द्वारा शक्ति के सुन्दर तथा रौद्र रूपों की कल्पना की गयी है। सुन्दर रूप में वह गजलक्ष्मी, पार्वती, मीनाक्षी आदि है। वही तारा तथा अम्बिका है। रौद्र रूप में वह सिंहवाहिनी दुर्गा और महिषासुर मर्दिनी है।

भारतीय धार्मिक कला के तीन रूप बहुत प्रभावशाली और महत्वपूर्ण हैं। ये सारे संसार की महानतम कला कृतियों में गिने जाते हैं ये शेषशायी विष्णु, त्रिमूर्ति और शिव ताण्डव हैं। शेषशायी विष्णु की प्रतिमा में क्षीर सागर अनन्त और असीम का प्रतीक है। शेषनाग सृष्टि के 'शेष' के प्रतीक हैं, उनके सहस्र फन सृष्टि के सहस्रों रूपों के प्रतीक हैं। विष्णु 'पुरुष' तत्व और लक्ष्मी 'स्त्री' तत्व के प्रतीक हैं। विष्णु की नाभि में से निकलता कमल और उस पर आसीन ब्रह्मा सृष्टि के बीज और चतुर्दिक विकास के प्रतीक हैं। देवगढ़ की गुप्तकालीन शेषशायी की प्रतिमा इसका सुन्दर उदाहरण है।

शिव का महेश्वर रूप त्रिमूर्ति में स्पष्ट है। इसमें शिव के तीन रूप—शिव, भैरव तथा शक्ति-तीन मुखों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। केन्द्र का मुख शिव के कल्याणकारी स्वरूप को, बायीं ओर का मुख उनके रौद्र रूप को तथा दाहिनी ओर का मुख उनकी नारी रूप की सौम्यता

को प्रस्तुत करता है। वाकाटक युग की यह प्रतिमा ऐलीफेण्टा में स्थित है। इस प्रतिमा में सृष्टि के पिता ईश्वर के विभिन्न रूपों को एक ही जगह देखा गया है। सम्भवत: उनका नारी रूप जननी अर्थात् सृष्टि का प्रतीक है, रौद्र रूप संहार का प्रतीक है। यह सृष्टि पुरुष तथा नारी दोनों से मिलकर बनी है तथा इसके पीछे जो शक्ति है वह अकेली पुरुष या स्त्री नहीं है—इसी विचार ने शेषशायी और त्रिमूर्ति के साथ-साथ एक और रूप को जन्म दिया है जो अर्द्ध नारीश्वर का है। इसका आधा शरीर पुरुष का तथा आधा स्त्री का है।

तीसरी महान् आकृति शिव-ताण्डव की है। भारतीय कलाकार की कल्पना का यह सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। सृष्टि का निरन्तर सृजन और विनाश जीवन और मृत्यु का शाश्वत नृत्य है। संहार के पश्चात् सृष्टि तथा सृष्टि के पश्चात् संहार-इस प्रकार यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। इसे लयपूर्ण गति अथवा नृत्य के रूप में ही नटराज की प्रतिमा बनाने वाले कलाकार ने कल्पित किया है और शिव के संहारक ताण्डव के पीछे पुन: सृष्टि की कल्पना करके उसे मंगलकारी नृत्य माना है। इसी को नटराज की मूर्त्ति में भारतीय कलाकार ने कल्पित किया है। ताण्डव करते हुए शिव की चोल कालीन कांस्य मूर्त्ति सर्वोत्तम मानी जाती है।

उक्त प्रमुख देवाकृतियों के अतिरिक्त भारतीय मूर्त्तिकला में गणेश, सूर्य, कार्तिकेय, इन्द्र आदि की भी अनेक प्रतिमाएँ बनीं हैं। धार्मिक मूर्त्तियों से सम्बन्धित पशु-पक्षी आकृतियों में गज, सर्प, वृषभ, अश्व, व्याल, शार्दूल, मकर तथा मयूर का बहुत अधिक अंकन हुआ है। आलंकारिक अभिप्रायों में मंगल घट (कलश), कल्प वल्ली, कमल, तथा धतूरे का अधिक प्रयोग किया गया है।

भारतीय कला में मिथुन आकृतियों के अंकन की भी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। एक प्राचीन उल्लेख में कहा गया है कि मन्दिरों के द्वार आदि पर मिथुन आकृतियाँ अंकित की जानी चाहिये। आरम्भ में पशुओं, पक्षियों तथा सर्पों के मिथुन (युगल) अंकित किये जाते थे। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में देव दर्शन के लिये जाते हुए स्त्री-पुरुष युगलों का अंकन किया गया है। अजन्ता आदि में उड़ते हुए गन्धर्व तथा किन्नर मिथुनों का अंकन मिलता है। इन्हीं के आधार पर आगे चलकर रति मूलक नर-नारी मिथुन आकृतियाँ बनने लगीं।

वास्तु शास्त्रों में रमणीक प्राकृतिक दृश्य तथा जलाशय से युक्त भूमि के निकट देवालय बनाने की आज्ञा दी गयी है। इन्हीं का लक्ष्य लेकर मन्दिरों की भित्तियों तथा द्वार-पक्षों पर प्रकृति की वस्तुओं को अंकित किया जाता था। यह विश्वास था कि रमणीक प्राकृतिक स्थान तथा वातावरण में बने मन्दिर में देवता प्रसन्नता से अधिक समय तक निवास करते हैं। इसी से पशु-पक्षियों के क्रीड़ा-रत युगलों का अंकन आरम्भ हुआ जो मध्यकाल में खुजराहो तथा कोणार्क आदि की नग्न विलास पूर्ण मिथुन आकृतियों में बदल गया। मिथुन मूर्तियों पर तांत्रिक प्रभाव भी है।

भारतीय कलाओं में आनन्द मूलक पक्ष सदैव प्रबल रहा है। इसी के कारण जहाँ एक ओर मिथुन आकृतियों का अंकन हुआ है वहीं दूसरी ओर नृत्यमयी आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हुई हैं। शिव की नृत्यमयी प्रतिमाएँ प्राय: उन सभी स्थानों पर बनीं हैं जहाँ शैव धर्म से सम्बन्धित मन्दिर बने हैं। इनके अतिरिक्त नर्तकियों की विभिन्न भावपूर्ण मुद्राएँ अनेक मन्दिरों में उत्कीर्ण की गयी हैं। इन सब में औरंगाबाद की नर्तकी तथा संगीत मण्डली की उत्कीर्ण आकृतियाँ

सर्वोत्तम उदाहरण हैं। मध्य काल में नृत्य करते हुए गणेश की भी अनेक मूर्त्तियाँ बनीं जिनमें होयसल कलाकृतियाँ बेजोड़ हैं।

धर्म, तंत्र और नृत्यकला के प्रभाव के कारण भारतीय मूर्त्तिकला के कुछ विशेष नियम विकसित हुए हैं। इन नियमों के अनुसार मूर्त्तियों को खड़ी, बैठी अथवा लेटी स्थितियों में दिखाया जाता है।

**स्थान**—खड़ी मूर्ति की निम्न स्थितियाँ हैं—

**भद्रासन**—पैरों को खोलकर सीधे खड़े होना।

**समभंग**—बिल्कुल सीधे खड़े होना, शरीर में कोई भी भंगिमा न हो। शरीर के दोनों ओर के भाग एक समान हों। इसे वज्रासन या दण्डासन तथा खड्गासन भी कहते हैं।

**अभंग**—शरीर समभंग भी भाँति हो किन्तु एक घुटना स्वाभाविकता से किंचित् आगे हो।

**त्रिभंग**—शरीर तीन स्थानों पर टेढ़ा हो, सिर एक दिशा में, वक्ष से कटि पर्यन्त अन्य दिशा में और नीचे का भाग पुनः दूसरी दिशा में हो। यह स्थिति आकृतियों का लास्य भाव प्रकट करती है।

**अतिभंग**—इसमें शरीर कई स्थानों पर मुड़ जाता है जैसे शिव-ताण्डव में।

**शाल भंजिका**—नारी-आकृतियों में प्रयुक्त यह मुद्रा बहुत सुन्दर हैं। इस मुद्रा में त्रिभंग शरीर में खड़ी स्त्री एक हाथ से वृक्ष की शाखा पकड़े रहती है। इससे शरीर का बोझ हाथ पर आ जाता है और शरीर में सुन्दर भंगिमा आ जाती है। बुद्ध जन्म के समय लुम्बिनी वन में महारानी माया देवी शाल वृक्ष की डाल पकड़े थीं उसी के कारण इस मुद्रा को शाल भंजिका मुद्रा कहते हैं।

**आसन**—बैठने की स्थितियाँ मुख्य रूप से निम्न हैं—

**पद्मासन**—पालथी लगाये, दोनों पैरों के तलवे ऊपर की ओर दिखाई दें तथा एक सीध में हों।

**अर्द्धपद्मासन**—पालथी लगाये एक पैर का तलवा उल्टा हो।

**ललितासन**—एक पैर पालथी की स्थिति में, दूसरे का घुटना उठा हुआ, बाँयी हथेली पर शरीर का बोझ।

**महाराज लीलासन**—कुर्सी पर एक पैर लटकाये, एक पैर ऊपर, शरीर कुछ लेटी हुई स्थिति में बायीं कुहनी पर स्थित।

**मैत्रेयासन**—कुर्सी पर दोनों पैर एक समान।

**विश्रामासन**—कुर्सी पर बैठकर एक पैर लटकाना, दूसरा पैर हाथ से पकड़ना।

**शयन**—लेटी हुई स्थिति में प्राय: शेषशायी विष्णु, बुद्ध का परिनिर्वाण, यशोदा और कृष्ण, कौशल्या और राम तथा त्रिशला और महावीर आदि अंकित किये गये हैं।

**अरूप तथा सरूप मुद्राएँ**—मुद्राएँ दो प्रकार की हैं। अरूप तथा सरूप। अरूप मुद्राओं से किसी भाव अथवा क्रिया की व्यंजना की जाती है। इनमें हस्त मुद्राएँ प्रमुख हैं। सरूप मुद्राएँ आयुध आदि हैं।

**हस्त मुद्राएँ**—मूर्ति तथा चित्र की भाषा मूक होती है। इसमें शरीर की भंगिमा वेश-भूषा तथा वातावरण आदि से भाव की व्यंजना की जाती है, किन्तु सबसे अधिक सहयोग हस्त-मुद्राओं का रहता है। प्राचीन भारतीय नृत्य शास्त्र में इनके अनेक भेद गिनाये गये हैं इनके साथ-साथ चित्रकार और मूर्त्तिकार कुछ अन्य मुद्राओं का भी प्रयोग करते हैं। इनमें से मुख्य तथा विशेष महत्त्वपूर्ण हस्त मुद्राएँ निम्नलिखित हैं—

**ध्यान मुद्रा**—इसमें पद्मासन में बैठे तथा ध्यान लगाये साधक या तपस्वी की मूर्त्ति बनायी जाती है तथा गोद में बाँये हाथ के ऊपर दाहिना हाथ रख दिया जाता है। हथेलियाँ ऊपर की ओर रहती है। अँगुलियाँ मिली हुई और हाथ भूमि के समानान्तर खुले रहते हैं।

**अभय मुद्रा**—खड़ी या बैठी हुई आकृति वाली मूर्त्ति का दाहिना हाथ कुहनी से ऊपर मोड़कर कन्धे तक उठा रहता है और खुली हथेली से दर्शकों या श्रोताओं को अभय प्रदान करते हुए दिखाया जाता है।

**वरद मुद्रा**—खड़ी या बैठी मूर्त्ति का दाहिना हाथ कुछ आगे रहता है, हथेली खुली रहती है तथा अँगुलियाँ सटी हुई नीचे की ओर रहती हैं। इसके द्वारा वरदान देने की क्रिया दिखायी जाती है।

**व्याख्यान तथा वितर्क मुद्रा**—दाहिने हाथ की तीन अंगुलियाँ (मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा) ऊपर की ओर रहती हैं, तर्जनी तथा अंगूठे को मिला देते हैं, इनसे वृत्त बनता है जो पूर्णता का प्रतीक है।

**धर्म चक्र प्रवर्त्तन मुद्रा**—दाहिने तथा बाये हाथों में वितर्क (अथवा व्याख्यान) मुद्रा बनाकर इस प्रकार की स्थिति में रखें मानो दोनों हाथों के तर्जनी तथा अंगूठे से धागा पकड़े हों, या हाथ में चक्र पकड़े हों दूसरे से उसकी परिधि को घुमा रहे हों। यह बुद्ध द्वारा सारनाथ में प्रथम उपदेश देकर बौद्ध धर्म का चक्र आरम्भ करने की प्रतीक हैं इसलिये धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा कहलाती है। अन्य धर्मों तथा मूर्त्तियों में यह घूमते चक्र, सौर मण्डल, सृष्टि, गति, उत्थान-पतन तथा सुख-दुःख की वृत्ताकार गति की प्रतीक है।

**ज्ञान मुद्रा-(वज्र मुद्रा, बोध-श्री मुद्रा)**—इसमें बाँये हाथ के शेष अँगुलियाँ तथा अँगूठा बन्द रहते हैं, तर्जनी सीधी खड़ी रहती है जिसे दाहिने हाथ की मुट्ठी से बन्द कर लेते हैं। यह ज्ञान की सर्वोच्चता की प्रतीक है। इससे वज्र की आकृति बन जाती है अतः इसे वज्र मुद्रा भी कहते हैं।

**भूमि-स्पर्श मुद्रा**—इसमें दाहिने हाथ की हथेली उलटी (नीचे की ओर) रहती है, सटी हुई अँगुलियों से भूमि को स्पर्श करते हुए दिखाते हैं। यह पृथ्वी को साक्षी बनाने की मुद्रा है। तपस्या करते सिद्धार्थ ने मार के आक्रमण के समय तथा भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा भूमि को स्पर्श करके की थी।

**अंजलि मुद्रा**—इसमें दोनों हाथ जुड़े हुए रहते हैं मानों प्रार्थना कर रहे हों।

**पुष्प पुट**—इसमें दोनों हाथ इस प्रकार मिले रहते हैं मानों हाथों में पुष्प आदि लेकर देवता को समर्पित करने वाले हों अथवा देवता से याचना कर रहे हों।

**बुद्ध पात्र मुद्रा**—इसमें बाँये हाथ की हथेली को इस प्रकार रखते हैं मानों उस पर कोई पात्र रखा हो। इसके ऊपर दाहिनी हथेली ऐसी स्थिति में रखते हैं मानों उस पात्र को ढक

रहे हों। इससे यह व्यक्त किया जाता है कि जो सत्य को नहीं जान पाता वह नियम के बन्धन में बन्द हो जाता है।

आकृति 21

**गोपन मुद्रा**—इसमें बांये हाथ की मुट्ठी बनाकर सीधे हाथ से ढकी दिखाते हैं (जैसे दीपक न बुझ जाय)। यह किसी रहस्य को छिपाने का भाव व्यक्त करती है।

**वृषभासन मुद्रा**—इसमें खड़े हुए शिव का एक हाथ कुहनी से आगे की ओर मुड़ा हुआ इस प्रकार दिखाते हैं मानों यह वृषभ (नन्दी) की पीठ पर रखा हो। खड़े हुए शिव के शरीर में इस प्रकार की भंगिमा दिखाते हैं मानों वे वृषभ का थोड़ा-सा सहारा लिए खड़े हैं।

प्रयोग नहीं किया जाता था, परन्तु विरोधी, स्थानीय रंगों या काले सफेद रंगों के प्रयोग के द्वारा आकृति को निश्चित रूप प्रदान किया जाता था। परन्तु ग्रिफिथ्स महोदय ने चित्र के रेखांकन में केवल लाल रंग के प्रयोग के द्वारा रेखांकन करने की पद्धति का ही वर्णन दिया है। चित्र में आवश्यकतानुसार छाया का प्रयोग किया जाता था, जैसे ठुड्डी के नीचे गहरे रंग का बहुधा वाश (Wash) लगाकर गोलाई को उभारा जाता था।

## अजन्ता के भित्तिचित्रों के रंग

भित्तिचित्रण में गिने-चुने खनिज रंगों का ही प्रयोग किया जाता है, ताकि वे चूने के क्षारात्मक प्रभाव से अपने अस्तित्व को न खो बैठें। अजन्ता तथा बाघ में जिन रंगों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया गया है उनमें सफेद, लाल, पीले और विभिन्न भूरे रंग हैं। इनके अतिरिक्त एक गंदे हरे (संग सब्ज़ या टेरावर्ट) और नीले (लेपिसलाजुली) रंगों का प्रयोग है। सफेद रंग प्रायः अपारदर्शी है और चूने या खड़िया से बनाया गया है। लाल तथा भूरे रंग लोहे के खनिज रंग हैं। हरा रंग एक स्थानीय पत्थर से बनाया गया है जो ताँबे का खनिज रंग है जिसे टेरावर्ट (संग सब्ज़) कहते हैं। अजन्ता के परवर्ती चित्रों में लेपिसलाजुली रंग (नीले रंग) का भी प्रयोग है। यह रंग एक बहुमूल्य खनिज-पत्थर से बनाया जाता था और इस रंग को फारस तथा बदख्शा से आयात किया जाता था। शेष रंग स्थानीय हैं। प्राचीन चित्रों में जैसे जोगीमारा और पाँचवीं शताब्दी के सिगिरिया गुफाओं के चित्रों में नीला रंग बिल्कुल भी प्रयोग नहीं किया गया है। छठी शताब्दी से अजन्ता की दूसरी गुफा में लेपिसलाजुली रंग (नीले रंग) का प्रयोग दिखाई पड़ता है। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी में लाल तथा पीले रंग का अत्यधिक प्रयोग है। अनुमान है कि अजन्ता के चित्रकारों ने संखिया की भस्म से बने पीले रंग का प्रयोग भी किया है।

## अजन्ता की गुफाओं के चित्रों का विषय

आलंकारिक आलेखनों को छोड़कर अजन्ता के अधिकांश चित्रों का विषय बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित है। इन चित्रों में बुद्ध के विभिन्न चित्र और पवित्र धर्म चिन्ह सम्मिलित हैं, साथ ही बुद्ध की जन्म-जन्मांतर की जीवन-कथाएँ तथा जातक-कथाएँ इन गुफाओं की चित्रकारी का प्रधान विषय हैं। जातक कथाओं के अन्तर्गत बुद्ध के अनेकों पूर्व जन्मों की कथाएँ हैं, जिनका चित्रकार ने सुंदरता से अंकन किया है। यह जातक कथाओं के ही चित्र हैं, यह बात दो आधारों पर ही कही जा सकती है– प्रथम इन चित्रों पर जातक कथा का नाम लिखा है परन्तु चित्रों के नष्ट हो जाने से चित्र को पहचानने में असुविधा होती है, दूसरे दसवीं गुफा में षड्दंत हाथी की

जातक कथा तथा अन्य जातक कथाओं को उनके घटनाक्रम के अनुसार अंकन एवं उनकी विशेषताओं के कारण पहचाना जा सकता है।

## अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी

अजन्ता की गुफाओं में आरम्भिक चित्रकारी के उदाहरण नवीं गुफा तथा दसवीं गुफा में प्राप्त हैं। इन गुफाओं के चित्र बहुत अधिक क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। यह चित्र साँची तथा भरहुत की प्रस्तर शिल्प-शैली से विशेष समानता रखते हैं। अतः इन चित्रों के समय का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। परसी ब्राउन महोदय ने नवीं तथा दसवीं गुफा के चित्रों को १०० ई० पू० का माना है और इन गुफाओं के स्तम्भों पर बने चित्रों को ३५० ई० का माना है। दसवीं गुफा में एक ब्राह्मीलिपि का लेख है जिसके अनुसार विन्सेंट स्मिथ ने नवीं तथा दसवीं गुफा के चित्रों को दूसरी शताब्दी ई० पू० से १५० ई० तक का माना है।[८] इन दोनों गुफाओं के चित्रों की शैलियों में बहुत साम्य है, अतः इन दोनों के चित्रों को समकालीन माना गया है। तत्कालीन वास्तु तथा मूर्तियों से भी इन चित्रों में विशेष समानता है।

**नवीं गुफा के चित्र**—इस गुफा में ग्रिफिथ्स महोदय ने एक दीवार से पलस्तर का एक बड़ा खण्ड (पपड़ा) छुड़ाकर उसके नीचे एक चित्र खोजा, जो चट्टान पर पोर्सलीन के समान चमकदार पलस्तर चढ़ाकर उसके ऊपर से बनाया गया था। यह नीचे वाला चित्र एक बैठी हुई स्त्री का है। इस गुफा का यह प्राचीन चित्र है, क्योंकि बाद में कई पुराने चित्रों को पतले पलस्तर की तह से ढककर ऊपर से चित्रकारी की गई है। नवीं गुफा में बने कुछ चित्र 'गुप्तकाल' के भी हैं।

इस गुफा में चित्रित स्तूप की ओर जाते पुजारियों के दल में तत्कालीन वास्तु तथा मूर्ति-कला से बहुत समानता है। इस चित्र में प्रयुक्त अर्द्धवृत्ताकार स्तूप, तोरण द्वार, पुरुषों के मुरेठे जिनमें लट्टूनुमा बड़ा मोती आगे माथे पर निकला तत्कालीन प्रस्तर उरेहन में भी प्रचलित थे। इस चित्र में पुरुषों के वर्गाकार चेहरे बड़े-बड़े मोतियों की मालाएँ, भारी आभूषण उस समय की आंध्र प्रदेश की मूर्तियों की याद दिलाते हैं। इन आकृतियों में लटकते हुए कमर-बंद तथा निकले हुए दर्शनीय हैं। गुफा में प्रवेश करते ही बायीं ओर जो लेख हैं, वे अनुमानतः ईसा के हैं। इन चित्रों की अपनी विशेषताएँ हैं, जो इनको गुप्तकालीन चित्रों से पृथक देती हैं। उदाहरणार्थ इन चित्रों में कुल चार रंगों का प्रयोग है। ये रंग, काले, पी हरे तथा हरौंजी के लाल रंग हैं। इन आकृतियों के चेहरे तथा मुद्राएँ एक प्रकार हैं। आँखें भावरहित हैं और आकृतियों की हस्त मुद्राएँ शिथिल हैं। नवीं गुफा इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों तथा फलों का अंकन किया गया है, जि चित्रकार ने अपनी निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है। यहाँ स्तम्भों पर आकृतियाँ चित्रित हैं और भित्तियों पर चरवाहों के दृश्य भी बनाये गए हैं।

**दसवीं गुफा के चित्र**—इस गुफा की दाहिनी भित्ति पर आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व तक अधिक चित्र थे। ये चित्र प्रारम्भिक शैली के थे। इनमें विशेष रूप से शक्तिशाली स्वतंत्रत रेखाओं से हाथियों का अंकन किया गया था। इस चित्रावली में छःदन्त जातक की कथा चित्रित है जिसमें चित्रकार ने घने जंगल का अंकन सुंदरता से किया है और नाना प्रकार के वृक्ष जैसे बरगद, गूलर तथा आम के वृक्ष चित्रित किये गए हैं। इस जंगल के दृश्य में हाथियों को जलक्रीड़ा में मग्न चित्रित किया गया है। इनमें छःदन्त हाथी अपनी हथनियों को सूंड से कमल पुष्प देते या कहीं पर अपने लिए अजगर से बचाते चित्रित किया गया है।

दूसरी ओर जंगल में व्याघ्र प्रवेश करते हैं और छःदन्त हाथी रूपी बोधिसत्व स्वयं उनके आगे समर्पण कर देते हैं। अन्तिम दृश्य में व्याघ्र काशीराज के अन्तःपुर में पहुँचते हैं। काशीराज की रानी सुभद्रा पूर्वजन्म में छःदन्त गज की हथनी थी, अतः डाहवश वह छःदन्त गजराज के दाँतों को काटकर लाने की आज्ञा देती है और कटे दाँतों को कहारों के कंधों पर बंहगियों पर लदा देखकर मूर्छित हो जाती है, राजा सहारा देता है—चार दासियाँ जो पीछे खड़ी हैं घबराई हुई हैं—एक दासी सहारा देने को बढ़ रही है। यह चित्र कलाकार ने बड़ी सुंदरता से अंकित किया है। परन्तु इस चित्र का पर्याप्त भाग दर्शकों ने अपना नाम लिख-लिखकर खुरच डाला है।

बायी भित्ति पर एक जलूस के दृश्य का चित्रण है इसमें आगे पैदल, सशस्त्र घुड़सवार और पीछे स्त्रियों के दलों को तीव्र गति से आगे बढ़ते हुए अंकित किया गया है, इस चित्र में राजा को आठ स्त्रियों के बीच में चित्रित किया गया है। इस चित्र की योजना बहुत सुगठित है, और कुछ आकृतियों को संतोषजनक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र में हस्त मुद्राओं और भुजाओं का चित्रण स्वाभाविक तथा गोलाई युक्त है।

इस गुफा में ही श्याम जातक का चित्र है। श्याम जातक तीसरी शताब्दी में चित्रित किया गया है। इस चित्र में अंधे माता-पिता की सेवा करने वाले एक काले वर्ण के युवक 'श्याम' को काशीराज के द्वारा तीर से मार देने की कथा आती है। कंधे पर घड़ा लिये श्याम की आकृति सुंदर है और माता-पिता की आकृति में वेदना है। भागते हुए हिरणों का अंकन भी मार्मिक है।

इस गुफा के स्तम्भों पर जो बुद्ध चित्र खड़ी मुद्रा में बनाये गए हैं और उनके कपड़ों तथा सिर के पीछे प्रकाश पुंज (तेज मण्डल) दर्शाये गए हैं उनमें गांधार शैली का प्रभाव है। विन्सेंट स्मिथ के अनुसार ये चित्र अनुमानतः पाँचवीं शताब्दी या बाद के हैं।

**सोलहवीं गुफा के चित्र**—इस सम्पूर्ण गुफा के गर्भ में आज से लगभग अस्सी या एक सौ वर्ष पूर्व अधिक चित्र थे, परन्तु अब बहुत से चित्र नष्ट हो चुके हैं। ग्रिफिथ्स महोदय ने इस गुफा के एक मुख्य चित्र 'बुद्ध-उपदेश' को प्रकाशित किया है। इसी विषय का एक दूसरा चित्र इस गुफा में है। इस चित्र में बुद्ध की मुखाकृति नष्ट हो चुकी है, परन्तु

उनके भक्तों की आकृतियों को कम क्षति पहुँची है। भक्तों में एकाग्रचित्तता और भक्तिमय नम्र दृष्टि दिखाने में कलाकार को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है।

सोलहवीं गुफा की दाहिनी भित्ति पर सुजाता की कहानी चित्रित है। इसमें गायों का चित्रण सुंदर है और भवन में गुप्तकालीन प्रस्तर शिल्प जैसी ज्यामितिक तरह से जालियाँ काटी गई हैं।

इस गुफा की बाँयी भित्ति पर उन चार दृश्यों (वृद्ध, पुरुष, शव, वृषभताड़न तथा वैरागी) का चित्रण है जिन्हें देखकर बुद्ध को वैराग्य उत्पन्न हुआ था। इसी गुफा में एक स्थान पर माया देवी के स्वप्न का दृश्य भी अंकित है। इस चित्र की पृष्ठभूमि वाले भाग में हाथी के दो दाँत भी अंकित थे, परन्तु अब इस चित्र में माया देवी की आकृति के केवल पैर ही शेष बचे हैं। ग्रिफिथ्स महोदय ने जिस समय इस चित्र को देखा था तो उस समय बुद्ध की आकृति को छोड़कर शेष भाग सुरक्षित था। इसी चित्र में एक ओर महाराज शुद्धोधन तथा माया देवी स्वप्न की चर्चा करते सोच-विचार में लीन दर्शाये गए हैं। माया देवी के चारों ओर दासियाँ अत्यन्त सुंदर मुद्राओं मे बैठी हुई हैं, परन्तु उनकी आँखों के चित्रण में निर्बलता-दृष्टिगोचर होती है। इस गुफा में ऊपर की ओर बुद्धजन्म से सम्बन्धित कथाओं में बुद्ध के जन्म के पश्चात उनके सात कदम चलने वाली कथा को सात पद चिन्ह बनाकर प्रतीकात्मक ढंग से दिखाया गया है साथ ही भगवान बुद्ध को भी बालक के रूप में इस कथा में चित्रित किया गया है। यहाँ पर बुद्ध के जन्म-स्थान लुम्बनी वाटिका के दृश्य भी सुंदरता से बनाये गए हैं। इन कथाओं के अतिरिक्त बुद्ध की पाठशाला के दृश्य अंकित हैं जिनमें बालकों की मनोरम क्रीड़ाएँ अंकित की गई हैं।

सोलहवीं गुफा में एक सबसे उत्कृष्ट चित्र है जो 'मरती राजकुमारी' के नाम से विख्यात है। इस चित्र की डॉ० बर्गीस (Burgess) तथा श्री फर्गुसन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस चित्र में एक कुलीन महिला ऊँचे आसन पर लेटी है और उसके पीछे एक दासी उसको सहारा देकर ऊपर उठाये है। पीछे खड़ी एक अन्य दासी अपनी छाती पर हाथ रखे है और एक महिला की ओर देख रही है। दूसरी दासी पंखा झल रही है—सफेद टोपी लगाये एक वृद्ध पुरुष दरवाजे पर खड़ा है और दूसरा एक खम्भे के पास बैठा है—सामने की ओर दो स्त्रियाँ बैठी हैं। दूसरे प्रकोष्ठ में दो स्त्रियाँ हैं जिनमें से एक पारसी टोपी पहने है और हाथ में कलश लिए है जिस पर जलपात्र ढका हुआ है। दूसरी युवती के बाल नीग्रो जैसे हैं और वह कुछ माँग रही है। दूसरी ओर दो परिचारिकाएँ एक अलग प्रकोष्ठ में बैठी हैं। इस मरणासन्न कुलीन महिला का सिर गिर रहा है, आँखें बंद हैं और उसके अंग-अंग मरण-पीड़ा से विक्षिप्त हैं। एक परिचारिका इस महिला की नाड़ी देख रही है, उसके चेहरे पर मृत्यु के आतंक की एक विषादमय छाया है। पंखा झलने वाली स्त्री तथा दो पुरुषों की मुखाकृति पर भी दुःख का भाव है। फर्श पर नीचे बैठे हुए सम्बन्धियों ने जैसे जीवन की आशा ही त्याग दी हो और उन्होंने रुदन आरम्भ कर दिया है। इस दल में एक स्त्री अपवर्तन मुद्रा में हाथों से अपना मुख छिपाए रो रही है।

दया और करुणा के भाव को उद्दीप्त करने के दृष्टिकोण से यह चित्र एक सफल अभिव्यक्ति है। यूरोप में वेनिस के कलाकारों ने विविध वर्णों का उत्तम विधान प्रस्तुत किया है और फ्लोरेंस के कलाकारों ने कितना ही शक्तिपूर्ण रेखांकन करके चित्र बनाये हों, परन्तु वे फर्गुसन के मतानुसार 'भावों की इतनी मार्मिक और सशक्त अभिव्यक्ति की सफलता को प्राप्त नहीं कर सके। हैं।'

**सत्रहवीं गुफा के चित्र**—सत्रहवीं गुफा के चित्र सोलहवीं गुफा के चित्रों के बाद के हैं परन्तु ये चित्र पहले से अधिक खराब अवस्था में हैं। डॉ० बर्गीस ने इस गुफा में लगभग ३१ दृश्यों का वर्णन दिया है परन्तु अब बहुत कम चित्र प्राप्त हैं।

इस गुफा में घुसते ही बाहरी बरामदे की दीवार पर सुंदर चित्र थे जो नष्ट हो चुके हैं। द्वार के दोनों ओर किसी समय बोधिसत्व के चित्र बने रहे होंगे परन्तु अब इनके केवल मुकुट मात्र ही रह गए हैं। इस गुफा की छत में सुंदर आलेखन बनाये गए हैं।

इस गुफा के अंदर अनेक सुंदर चित्र हैं जिसमें नलगिरि नामक हाथी के आक्रमण के भी कई दृश्य हैं, किन्तु इन चित्रों के रंग फीके पड़ गए हैं और कई अंश पलस्तर के साथ गिर गए हैं। यहीं पर एक षडरचक्र का भी आलेखन किया गया है। इस चक्र के केन्द्र में अनेक प्रकार की आकृतियाँ हैं। इस चित्र में कई दृश्य, जैसे बाजार, उद्यान, गोष्ठी आदि के दृश्य हैं। इस चक्र को एक व्यक्ति हाथ फैलाकर पकड़े हुए है, सम्भवतः यह कोई दार्शनिक तत्व अंकित किया गया है। इसके किनारे सर्पाकार नदी का बाढ़युक्त जल का प्रवाह अंकित है जिसके भय से लोग भाग रहे हैं। अधिकांश विद्वानों ने इसे संसृति का चित्र माना है। इस प्रकार के चित्रों के अंकन की परम्परा तिब्बत में भी दिखाई पड़ती है। इसी गुफा में अनेक महत्त्वपूर्ण जातक कथाओं के चित्र अंकित हैं जिनमें छःदन्त जातक, महाहंस जातक, श्याम जातक, सुसोम जातक, महिष जातक, सिंहलावदान, शिविजातक, मृगजातक आदि हैं। इसी गुफा में मातृ-पोषक जातक की कथा भी सुंदरता से अंकित की गई है। मातृपोषक जातक की कथा इस प्रकार है—'एक बार बुद्ध श्वेत हाथी के रूप में अवतीर्ण हुए थे, उनको पकड़कर काशीराज के पास लाया गया परन्तु यहाँ उन्होंने अपनी माँ के वियोग में दाना-पानी छोड़ दिया, काशीराज को जब यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने श्वेत हाथी को पुनः जंगल भेज दिया।' इस जातक कथा के अंकन में चित्रकार ने हाथी के माँ से पुनः मिलन की दशा को बड़ी मार्मिक दृष्टि से अंकित किया है। इस जातक कथा के अंतिम दृश्य में श्वेत गज अपनी सूंड से अपनी अंधी माँ को सहलाते हुए दिखाया गया है।

इस गुफा में 'मार-विजय' का भव्य चित्र अंकित है। एक दूसरे चित्र में बुद्ध धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में ध्यानमग्न हैं और चारों ओर एकत्र उनके भक्तजन दर्शाये गए हैं। यह भक्त वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं और अनुमानतः अभिजात वर्ग के हैं। कुछ व्यक्ति हाथी पर ठे हैं। यहाँ पर बोधिसत्व की पृष्ठभूमि में एक पर्वत के अन्तर्गत दर्पण में सखियों सहित ब्र देखती हुई एक स्त्री का चित्रण अपने अनुपम सौन्दर्य के लिए विख्यात है।

यहीं पर वेस्सन्तर जातक की मार्मिक कथा का दृश्य भी चित्रित है। इस चित्र में बोधिसत्व राजा भावपूर्ण हस्तमुद्रा धारण किये आसन पर बैठा चित्रित किया गया है, सामने एक भिक्षुक अपने कुरूप दाँत निकाले कुछ भिक्षा याचना कर रहा है। उसकी याचना से सारा राज परिवार चकित है। राजा के पीछे बैठी स्त्रियाँ चिंतित हैं। यहाँ भिक्षु राजा की दानशीलता का यश सुनकर एक यज्ञ में बलि देने के लिए उसके राजकुमार पुत्र को भिक्षा में प्राप्त करने आया है—राजकुमार तैयार है। पीछे एक सेवक पात्र में जल ले आया है जिससे यह प्रतीत होता है कि राजा ने इस महादान का संकल्प कर लिया है। इस चित्र में हस्त-मुद्राएँ तथा नेत्रों के भाव उल्लेखनीय हैं। चित्र की रेखाएँ भी सुडौल तथा शक्तिशाली हैं—विशेष रूप से भिक्षु के कुरूप चेहरे, गंजे सिर, पोपले मुँह से बाहर निकले दाँत, गालों की उठी हड्डी, भारी ठुड्डी आदि के अंकन में कलाकार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है।

यहाँ पर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण चित्र अंकित है जिसमें कई सौ चेहरों का अंकन किया गया है। इस चित्र में सुंदरियों के दलों, सवारियों, राज्याभिषेक, दरबार आदि के पक्षों का सुंदर चित्रण हुआ है। इसी चित्र में डाकिनियों का युद्ध भी विशेष महत्त्व का है। अजन्ता के चित्रकार ने सुंदरता में ही रुचि प्रदर्शित नहीं की है बल्कि कुरूप तथा भयानक रूपों के अंकन में भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

इस गुफा में ही 'राहुल-समर्पण' नामक भव्य चित्र अंकित है। इस चित्र में बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात यशोधरा से मिलन दिखाया गया है—बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कपिलवस्तु पधारते हैं। वे यशोधरा के द्वार पर याचक के रूप में आते हैं, यशोधरा भिक्षा में अपने जीवन आराध्य देव को पुत्र राहुल जैसी एक मात्र निधि से बढ़कर क्या दे सकती थी? यशोधरा भगवान के सम्मुख राहुल को समर्पित कर देती है। यहाँ पर बुद्ध को अन्य आकृतियों से बड़ा बनाया गया है। इसका कारण यह है कि बुद्ध साधारण मानव से महान थे। अतः उन जैसी महान आत्मा को विशाल रूप देकर उनकी महानता को स्थापित किया गया है। इसी गुफा में सिंहलावदान की कथा के चित्रण में सिंहल के यात्रियों का समुद्र में पोत टूट जाने पर राक्षस जाति के लोगों से युद्ध का दृश्य सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें युद्ध की गति, योद्धाओं की भंगिमाएँ तथा अस्त्र-शस्त्र सुंदर है।

इसी गुफा का एक अन्य चित्र जिसकी कथा 'महाहंस जातक' पर आधारित है, अपने अनुपम वर्ण-विधान के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। इस चित्र की कथा इस प्रकार है—'बुद्ध एक जन्म में स्वर्ण हंस के रूप में अवतीर्ण हुए। इसी समय काशीराज की रानी खेम ने स्वप्न में स्वर्ण हंस देखे, इस कारण राजाज्ञा से बहेलियों ने स्वर्ण-हंस रूपी बुद्ध और सुमुख हंस को पकड़कर काशीराज की सेवा में ला प्रस्तुत किया। काशीराज की सभा में स्वर्ण-हंस राजा को उपदेश देता है और काशीराज बुद्ध को सिंहासन पर बैठाते हैं और उनसे उपदेश ग्रहण करते हैं। काशीराज सुमुख हंस सहित बुद्ध को छोड़ देते हैं। यहाँ से वे चित्रकूट

की ओर चल देते हैं।' बुद्ध ने जातक कथा में बताया कि—'पूर्वजन्म में बहेलिया, चन्ना, रानी खेम, धाया खेम, सुमुख हंस, आनंद और काशीराज सरिपुत्र हुए और स्वर्ण-हंस स्वयं मैं था।' इस चित्र में राजा सिंहासन पर विराजमान है, पीछे चमरधारी परिचारिकाएँ हैं—एक परिचारिका के हाथ में छत्र है। एक परिचारक का रंग नीग्रो जैसा है, राजा के नीचे पेरों के समीप बहेलिया बैठा हुआ है। उसके शरीर का रंग गहरा लाल है। मध्य में हंस एक सिंहासन पर विराजमान है। हंसों के ऊपर राजा ने सम्मान सूचक छत्र लगवा दिए हैं। पृष्ठभूमि में आलेखनों से युक्त कनात खड़ी है। चित्र के अग्रभाग में एक झील है। जिसमें गुलाबी कमल, अनेक जल-पुष्प तथा जल-पक्षी हैं। इस चित्र में अजन्ता की कला का वर्ण-विधान सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया है और लाल, सफेद तथा गहरे हरे रंगों का संतुलन उल्लेखनीय है।

**उन्नीसवीं गुफा के चित्र**—यह गुफा चैत्य गृह है। इसमें पत्थर को काटकर अधिक अलंकरण कार्य किया गया है। चित्रों में गौतम बुद्ध के चित्र और सामने की ओर बने छत के आलेखन सुंदर हैं।

**छठी गुफा के चित्र**—उन्नीसवीं गुफा के समान ही छठी गुफा में भी कुछ चित्र प्राप्त हैं। इनमें केश संस्कार से युक्त एक सुंदरी तथा द्वारपालों के कुछ चित्र किसी कुशल चितेरे के बनाये हुए हैं।

**ग्यारहवीं गुफा के चित्र**—यहाँ पर हस्ति जातक की कथा तथा नन्द की कथा और उनकी विरह व्याकुल रानी के सुंदर चित्र हैं। एक चित्र में एक बांध के किनारे कुछ बालक और स्त्रियाँ सरोवर में स्नान कर रही हैं। इस चित्र में एक राक्षस भी है परन्तु इस चित्र की आकृतियों की लिखाई में निर्बलता है।

पहली और दूसरी गुफाओं के चित्र बाद में बनाये गए हैं। दूसरी में अकेली आकृतियाँ सुंदरता से बनायी गई हैं साथ ही कलाकार ने जटिल अंग-भंगिमाओं और मुद्राओं को अंकित करने का प्रयास किया है।

**पहली गुफा के चित्र**—इस गुफा में कई सुंदर कथाओं के दृश्यों का अंकन मिलता है, छतों पर सुंदर अलंकरण चित्रित किये गए हैं। (देखिये रेखाचित्र—अलंकरण अभिप्राय) इस गुफा में शिविजातक की कथा, विरहणी, नागराज की सभा का दृश्य, शंखपाल जातक, मारविजय तथा पुलकेशिन की सभा का दृश्य विशेष उल्लेखनीय चित्र हैं। शिविजातक की कथा का रूप पौराणिक है। इस चित्र में चित्रित चेहरे लम्बे तथा आलेखन मध्यकालीन हैं। चित्र की लिखाई मोटी-मोटी रेखाओं से की गई है जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि यह गुफा बाद में चित्रित की गई होगी। यहाँ पर विरह की पीड़ा से विह्वल एक सुंदरी का चित्र है। इस सुंदरी की विरह वेदना की कहानी कई सखियाँ जान गई हैं, और उसकी व्यथा को दूर करने का प्रयत्न कर रही है। इस चित्र में सजीवता है और आकृतियों की हस्त मुद्राओं तथा बालों के शृंगार के आलेखनों में कोमलता है किन्तु आकृतियों की शारीरिक रचना में भारीपन है। कटिभाग अति क्षीण है तथा कहीं-कहीं भृकुटियों को एक ही रेखा से बनाया गया है।

रेखाचित्र सं० २

*अलंकरण अभिप्राय (अजन्ता) गुफा—१, छत्त)*

इस गुफा में ही बायीं भित्ति पर नागराज सभा का चित्र अंकित है। इस सभा में नृत्य का अंकन है और दरबारी चहल-पहल एवं राजसी ठाठ-बाठ सुंदरता से दिखाया गया है। राजदम्पति के पीछे चमरधारिणी बड़ी ही मनोरम मुद्रा में अंकित की गई है।

मार-विजय के चित्रण में चित्रकार ने अपनी पूर्ण योग्यता का परिचय दिया है। यह चित्र पर्याप्त नष्ट हो चुका है। जब बुद्ध बोधिसत्व प्राप्ति के समीप पहुँच गये थे तो कामदेव ने तप डिगाने के लिये आक्रमण किया इसी घटना को लेकर यह चित्र बनाया गया है। इस दृश्य में अनेक कामुकतापूर्ण, भयंकर एवं क्रूर आकृतियाँ उपस्थित की गई हैं। एक ओर तपस्वी रूप में ध्यान मग्न बैठे हुए बुद्ध को एक लाल बौना आँखें फाड़कर देखते हुए डराने का प्रयत्न कर रहा है, एक भयानक आकृति तलवार चला रही है और इसी प्रकार की नाना आकृतियाँ बुद्ध को आतंकित करके तप से डिगाने का प्रयत्न कर रही हैं।

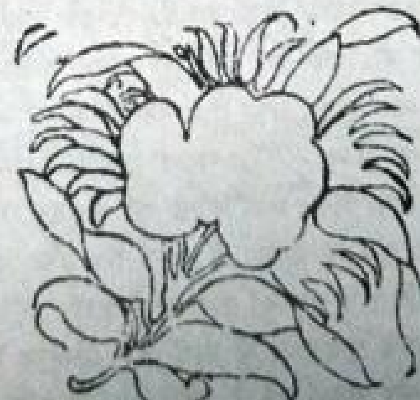

रेखाचित्र सं० ३

*अलंकरण अभिप्राय*

*रेखाचित्र सं० ४*
*अलंकरण अभिप्राय*

एक दृश्य में चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय की राजसभा में आये फारस के बादशाह खुसरो परवेज़ के राजदूत को चित्रित किया गया है। इस चित्र से भारत तथा फारस के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान होता है। इसी गुफा में 'चम्पेय जातक' की कथा का अंकन भी है। बुद्ध एक जन्म में नागराज थे। वे पकड़कर काशीराज की सभा में लाये जाते हैं। यहाँ पर वे काशीराज को उपदेश देते हैं। राजा नागराज को सिंहासन पर बिठाता है और महिलाएँ तथा राज-परिवार के सदस्य उनको चारों ओर से घेरे खड़े हुए अंकित किये गए हैं।

इसी गुफा में वज्रपाणि तथा पद्मपाणि बोधिसत्व के उत्कृष्ट चित्र अंकित हैं (देखिये रेखाचित्र—बोधिसत्व पद्मपाणि तथा बोधिसत्व वज्रपाणि)। असीम दया तथा करुणा के भावों ने इन चित्रों को विश्व-विख्यात कर दिया है। पद्मपाणि-बुद्ध के चित्र में बुद्ध भगवान की आकृति पांच फुट साढ़े नौ इंच × दो फुट साढ़े पांच इंच के विस्तार में पर्याप्त बड़ी बनायी गई है। चित्र की रेखाओं में प्रवाह और शक्ति है। बुद्ध के दोनों ओर गण बनाये गए हैं और बुद्ध लम्बी मालाओं से सुसज्जित हैं। बुद्ध के एक ओर राजकुमारी का चित्र है जिसे काली राजकुमारी के नाम से ही पाश्चात्य लेखकों ने सम्बोधित किया है। परन्तु स्व० रायकृष्ण दास का मत है कि सिंदूर से चित्रांकन होने के कारण आकृति के रंग काले पड़ गए हैं। उनके अनुसार चट्टानों में गंधक का अंश रहा होगा जो जल में घुलकर वर्षाकाल में चित्र के ऊपर चट्टानों से बहकर आया होगा और चित्र पर अपना प्रभाव डालता रहा होगा। इस कारण गंधक के प्रभाव से चित्र में सिंदूर का रंग काला पड़ गया है।

(37) (२८)

(५१) (32)

रेखाचित्र सं० ५
*अलंकरण अभिप्राय*

रेखाचित्र सं० ६
"बोधिसत्व पद्मपाणि" *(अजन्ता गुफा-१, सातवीं शताब्दी)*

रेखाचित्र सं० ८
राजा के चरणों पर नर्तकी
(अजन्ता गुफा नं० २ सातवीं शताब्दी)

रेखाचित्र सं० ६
युगल रानियाँ (अजन्ता गुफा)

रेखाचित्र सं० १०

*अप्सरा (अजन्ता गुफा-१७, पाँचवीं शताब्दी)*

बुद्ध-जन्म वाले चित्र में 'महामाया' तथा शुद्धोधन को स्वप्न की चर्चा करते दिखाया गया है। उनके चारों ओर दास-दासियाँ खड़े हैं। दासियों की अंग-भंगिमाएँ सुंदर हैं। सामने दो ब्राह्मण हैं, दाहिनी ओर महामाया के समान ही रत्नाभूषणों से सुसज्जित एक स्त्री स्तम्भ के सहारे खड़ी है। श्री रायकृष्ण दास ने इस आकृति को राजकुल महिला महाप्रजापति देवी, बुद्ध की विमाता माना है। महाप्रजापति एक कोमल लतिका के समान बायाँ पैर ऊपर उठाये खड़ी हैं उनका पैर स्तम्भ के सहारे टिका है और वे उसी के सहारे खड़ी हैं।

बुद्ध जन्म वाले दृश्य में शाल वृक्ष की डाल पकड़े महामाया उपवन में खड़ी हैं, उपवन के बाहर भिखारी हैं। इस चित्र में इन्द्र चौकोर टोपी लगाये हैं और तीन नेत्रों से युक्त दर्शाया गया है।

इसी गुफा में एक वैराग्य सूचक साधु का चित्र है परन्तु कुछ लेखकों ने इसे सर्वनाशसूचक साधु या राजदूत माना है। यह वृद्ध साधु एक लकड़ी के सहारे खड़ा है और एक हाथ की मुद्रा से 'सबकुछ मिथ्या है' के संदेश (भाव) को अभिव्यक्त कर रहा है। उसके नेत्रों तथा चेहरे में भी यही भाव है।

इसी गुफा में 'विदुर पंडित जातक' और 'झूला-झूलती राजकुमारी' के चित्र हैं। यह झूला-झूलती राजकुमारी मदमाते पूर्ण यौवन के प्रतीक झूले पर झूल रही है। यहीं पर एक और सुंदर चित्र है जिसमें शान्तिवादिन मुनि की कथा का अंकन है। एक जन्म में बुद्ध शान्तिवादिन मुनि के रूप में अवतीर्ण हुए और काशीराज के अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ उनके उपदेश सुनने गयीं। इस पर राजा ने उनके वध की आज्ञा दे दी। इस चित्र में राजा खड्ग लिये सिंहासन पर बैठा है, उसके पैरों पर गिरी कोमलांगी सुंदरियाँ भय से काँप रही हैं, तो कुछ भागना चाहती हैं और कुछ मुँह छिपाये चिन्तामग्न हैं। चित्र में सर्वप्रथम भय का भाव है। (देखिये रेखाचित्र—राजा के चरणों पर नर्त्तकी)

## बाघ गुफाएँ

**बाघ गुफाओं की स्थिति**—बाघ गुफाएँ प्राचीन ग्वालियर रियासत में विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी में स्थित थीं। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् यह गुफाएँ मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आ गयी हैं। १८१८ ई० में सर्वप्रथम इन गुफाओं का परिचय तथा विवरण लेफ्टीनेंट डेंजरफील्ड ने बम्बई से प्रकाशित किया। इन गुफाओं के चित्रों का १९०७ ई० से १९०८ ई० के मध्य में कर्नल सी० ई० लुआर्ड ने निरीक्षण किया और पुनः ये चित्र संसार के समक्ष आये। इन गुफाओं तक पहुँचने के लिये पहले महो रेलवे स्टेशन तक रेलगाड़ी से जाना पड़ता है ओर फिर महो से धारमार्ग के द्वारा बाघ कस्बे तक मोटर गाड़ियों से ८७ मील का मार्ग पार करना पड़ता है। यद्यपि बाघ कस्बे में ठहरने के लिये विश्रामगृह हैं, परन्तु शेष सुविधाओं के लिये पर्यटकों को अपनी व्यवस्था करनी पड़ती है। बाघ कस्बे से यह गुफाएँ दो या तीन मील की दूरी पर स्थित है। वर्षा-ऋतु में बाघ नदी में बाढ़ के कारण आने-जाने में असुविधा उत्पन्न हो जाती है, वैसे महो से पर्यटक के लिये टैक्सी तथा मोटर-गाड़ियों की सुविधा प्राप्त हो जाती है।

**बाघ का परिचय तथा गुफाएँ**—बाघ की गुफाओं का नाम निकट स्थित गाँव 'बाघ' के नाम पर पड़ा है। बाघ गुफाओं को स्थानीय लोग पंच-पांडव गुफाओं के नाम से पुकारते हैं। यह गुफाएँ विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिणी ढाल पर बाघ नदी

किनारे स्थित हैं। जिस क्षेत्र में यह गुफाएँ काटी गई हैं वह बाघ नदी से १५० फुट ऊँचा है, परन्तु इस क्षेत्र में रेतीली चट्टानें होने के कारण गुफाओं के निर्माण में बहुत असुविधा हुई। यहाँ पर कुल नौ गुफाएँ हैं जिनके सम्मुख भाग की लम्बाई ७५० फुट है। पहली गुफा 'गृह' है जिसका क्षेत्रफल २३×१४ फुट है। यह गुफा कमरे के समान है, जिसमें चार स्तम्भ हैं। इस गुफा का बाहरी बरामदा गिर चुका है और गुफा की दशा खराब है। दूसरी गुफा 'पांडवों की गुफा' है। इस गुफा की दशा अच्छी है यद्यपि धुएं तथा चिमगादड़ों के कारण चित्र धूमिल पड़ गए हैं। यह गुफा एक वर्गाकार चैत्य है जिसके तीन ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ काटकर बनायी गई हैं। बाहर की ओर स्तम्भों पर आधारित बरामदा है और पीछे एक स्तूपदार चैत्य या गर्भभाग है। तीसरी गुफा का स्थानीय नाम 'हाथी-खाना' या 'हस्तिखाना' है। यह भी सम्भवतः आवास के लिये बनायी गई होगी क्योंकि इस गुफा की कोठरियों को टेम्परा चित्रों से सुसज्जित किया गया है। इस गुफा का बाहरी बरामदा गिर चुका है। इस गुफा में दो मंडप (हाल) हैं। इस गुफा की दीवारों पर बुद्ध पूजा के चित्र बने हैं जिनसे अनुमान होता है कि यह गुफा चैत्यगृह थी और चौथी गुफा 'रंगमहल' है और इसमें अब भी सुंदर चित्रों के अवशेष सुरक्षित हैं। तीसरी और चौथी गुफा के मध्य २५० फुट खुरदुरी चट्टानें हैं परन्तु चौथी गुफा पाँचवीं से तथा पाँचवीं गुफा छठी से भीतर के द्वारों से सम्बन्धित है। चौथी गुफा के मध्य का मण्डप ८४ फुट लम्बा है। यहाँ पर दरवाजों पर ब्रेकिटों में जो मूर्तियाँ हैं, वह साँची की शैली से समानता रखती हैं। पाँचवीं गुफा ६५×४४ फुट क्षेत्रफल की गुफा है जिसमें दोनों ओर स्तम्भों की पंक्तियाँ हैं। इस गुफा में छतों, स्तम्भों तथा दीवारों पर टेम्परा चित्र बने हैं। छठी गुफा ४६ फुट का एक वर्गाकार मंडप (हाल) है जिसके साथ पाँच कोठरियाँ भी काटी गयी हैं। चौथी तथा पाँचवीं गुफा के सम्मुख २२० फुट का बरामदा है जो अब गिर चुका है। इस बरामदे के पीछे की दीवार पर ऊपरी भाग में ही चित्रों के समुचित अवशेष रह गए हैं। सातवीं, आठवीं तथा नवीं तीनों गुफाओं के विषय में बहुत कम ज्ञान हो पाता है क्योंकि इन गुफाओं की छतें गिर चुकी हैं और मिट्टी-चट्टानों तथा पत्थरों से दरवाजे बंद हो जाने के कारण भीतर प्रवेश करने का मार्ग अवरुद्ध हो गया है।

**गुफाओं का समय**—इन गुफाओं में कोई भी ऐसा लेख नहीं मिलता जिनसे इन महत्त्वपूर्ण कला-मंदिरों की गौरव गाथा का ज्ञान हो। यहाँ की चट्टानें भी इस योग्य नहीं थी कि उन पर लेख उत्कीर्ण किये जाते। प्रस्तर पर उभारन अलंकरण तथा मूर्तियों के निर्माण के लिये भी यह पत्थर की रेतीली चट्टानें उपयुक्त नहीं थीं। अतः अलंकरण के अभाव को पूरा करने के लिये चित्रकारी का प्रयोग ही किया गया है। इस प्रकार चित्रित प्रमाण ही लेखों का कार्य करते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रमाण भी अधिकांश नष्ट हो गये हैं, केवल एक स्थान पर अक्षर 'क' हिरौंजी के रंग में

लिखा रह गया है। श्री एम० बी० गेरडे के अनुसार प्राचीन लिपि में 'क' छठी-सातवी शताब्दी के प्रसंग में आया है और उनके अनुसार यही इन गुफाओं का समय माना गया है।" स्मिथ महोदय ने इन गुफाओं की चित्रकारी का समय ६२६-६२८ ई० माना है और इनको अजन्ता की पहली तथा दूसरी गुफा की चित्रकारी का समकालीन बताया है परन्तु १६२६ ई० में पुरातत्व विभाग की ओर से इन गुफाओं की सफाई तथा जीर्णोद्धार करते समय दूसरी गुफा में महाराज सुबंधु का ताम्रपत्र मिला जिससे इन गुफाओं के निर्माण का ठीक समय निश्चित हो जाता है।

इस ताम्रपत्र पर उत्तीर्ण लेख के अनुसार माहिष्मती के महाराज सुबंधु ने बुद्ध के गन्धधूप, माल्यावलि, सूत्र, पूजा आदि की योजना के लिए, भग्न स्फुटित के संस्करण के लिए तथा आर्य भिक्षु संघ के चारों दिशाओं से आकर ठहरने पर उनके चीवर पिन्ड पालग्लान प्रत्यय 'शय्यासन भैषज्य' के लिए 'दासिलकपल्ली' नामक ग्राम दान में दिया है। इस ताम्रपत्र में अंकित लेख की चौथी-पाँचवी पंक्ति से यह ज्ञान होता है कि यह दान 'कलयन' (बाघ) नामक बिहार को दिया गया। 'दासिलकपल्ली' ग्राम का अब कोई चिन्ह प्राप्त नहीं है।

इस अभिलेख के अनुसार विद्वानों का अनुमान है कि बाघ की गुफाएँ कलयन या 'कलायन' के नाम से पुकारी जाती थीं। इतिहासकारों ने महाराज सुबंधु का समय ४१६-४६६ ई० के मध्य माना है। इस प्रकार इस ताम्रपत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि ये गुफाएँ महाराज सुबंधु के समय में बनकर तैयार हो गई थीं और इस प्रकार इनका निर्माणकाल चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना जा सकता है।

**गुफाओं की खोज तथा सुरक्षा**—आधुनिक समय में इन गुफाओं की खोज १८१८ ई० में लेफ्टीनेंट डेंजर फील्ड नामक वास्तु-कला के विद्वान ने की, और फिर कई विद्वानों ने बाघ के सम्बन्ध में लेख लिखे। इनमें डब्ल्यू इरिस्किनी, ई० इम्पे, कर्नल सी० ई० लुआर्ड, स्व० असित कुमार हाल्दर तथा श्री मुकुलचन्द्र डे ने बाघ गुफाओं पर लेख प्रकाशित किए।

अंग्रेजी सरकार ने ग्वालियर राज्य में पुरातत्व विभाग की स्थापना के पश्चात् ही इन गुफाओं की समुचित सुरक्षा का प्रबंध कर दिया। सुरक्षा के लिए कई खिड़कियों तथा द्वारों को बंद कर दिया गया और गुफाओं की सफाई करायी गई। इन चित्रों की अनुकृतियाँ बनाने के लिए देश के प्रसिद्ध कलाकारों को अनुकृति चित्र बनाने का कार्य सौंपा गया। इन कलाकारों में स्व० नन्दलाल बसु, स्व० असित कुमार हाल्दर तथा श्री सुरेन्द्रनाथ कर (कलकत्ता), श्री ए० बी० भोंसल (ग्वालियर) तथा बी० ए० आपटे (बम्बई), श्री एम० एस० भौंड तथा श्री बी० बी० जगताप (ग्वालियर) थे। इनकी बनायी बाघ के चित्रों की प्रतिलिपियाँ ग्वालियर दुर्ग के गूजरी महल की एक बारहदरी में सुरक्षित थीं। इसके पश्चात् आरमीनियन चित्रकार सरकिस कचडोरियन ने भी बाघ के चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार कीं।

## बाघ गुफाओं के चित्र

बाघ गुफाओं के सबसे अच्छे चित्र चौथी और पाँचवीं गुफा के बाहरी बरामदे की भीतरी दीवार या गुफाओं के सामने की दीवार पर ऊपर के भाग में सुरक्षित थे। परन्तु बरामदे की छत गिर जाने से पर्याप्त चित्र नष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त दर्शकों ने नाम लिख-लिखकर भी चित्रों को क्षति पहुचाई है।

**पहला दृश्य**—अधिकांश चित्र चौथी गुफा के सम्मुख भाग में प्राप्त हैं। इन चित्रों का सिंहावलोकन नितान्त दक्षिणी छोर से चौथी गुफा के द्वार से आरम्भ करेंगे।' इस द्वार के ऊपर दो दृश्य अंकित हैं। पहले दृश्य में दो स्त्रियाँ एक छज्जे पर बैठी हैं जिसमें से एक शोकाकुल है और अपने दाहिने हाथ में लगे वस्त्र से अपने मुख को छिपाए है। उसका बायाँ हाथ किसी बात को व्यक्त करने की मुद्रा में फैला है। दूसरी स्त्री सम्वेदना और सहानुभूति में उसकी करुण-कहानी सुन रही है। इस छज्जे की छत पर नीले रंग से कबूतरों की जोड़ी बनायी गई है जो किसी प्रणय-प्रसंग का प्रतीक है। सम्भवतः यह किसी विरहणी का चित्र है। इस विरहाकुल स्त्री के चित्र को कुछ विद्वानों ने बुद्ध के विरह में व्याकुल यशोधरा का चित्र बताया है।

**दूसरा दृश्य**—दूसरे दृश्य में चार गहरे वर्ण के आभूषणधारी पुरुष किसी गंभीर वार्ता में निमग्न हैं। ये सब पुरुष आकृतियाँ पाल्थी बाँधे नीली तथा पीली आसनियों पर विराजमान हैं। इन आकृतियों की पृष्ठभूमि में उद्यान के फीके से चित्रण का आभास होता है।

**तीसरा दृश्य**—तीसरे दृश्य में स्पष्ट रूप से आकृतियों के दो समूह हैं जो एक के ऊपर एक बनाये गए हैं, परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह एक ही प्रसंग के चित्र हैं या एक ही दृश्य की घटना हैं। ऊपर वाले भाग में छः पुरुष आकृतियाँ हैं, ये आकृतियाँ हवा में उड़ रही हैं और बादलों से आच्छादित हैं। नीचे वाले भाग में केवल पाँच सिर ही शेष बचे हैं जो स्पष्ट रूप से गायिकाओं के चित्र हैं क्योंकि बीच वाली स्त्री के हाथ में वाद्य यंत्र है। इन स्त्रियों के केश जूड़े में बंधे है। इस चित्र में नीले रंग से जड़ाऊ आभूषण बनाए गये हैं। यह नीला रंग लेपिसलाजुली है जिसका प्रयोग अजन्ता के चित्रों में भी किया गया है। लेपिसलाजुली रंग को उस समय फारस से आयात किया जाता था।

**चौथा दृश्य**—चौथे चित्र में स्त्री गायिकाओं के दो दलों को चित्रित किया गया है। यह चित्र बाघ के समस्त चित्रों में अपनी मंडलाकार व्यवस्था, लय तथा सुंदरता के कारण सबसे अधिक प्रसिद्ध हो चुका है। पहले दल में सात स्त्रियाँ एक अन्य आठवीं नर्तकी को चारों ओर से घेरे खड़ी हैं। नृत्य करने वाली स्त्री पूरी आस्तीन का चुस्त कुर्ता पहने है जो घुटने तक नीचा है, तीन स्त्रियाँ डंडे बजा रही हैं, एक

*रेखाचित्र सं० ११*

*गायकदल (भित्तिचित्र) (बाघ गुफा नं०-४, पाँचवीं शताब्दी)*

मृदंग बजा रही है और शेष तीन मजीरे (ताल) बजा रही हैं। यह स्त्रियाँ उरोजों पर या तो आस्तीनदार चोली पहने हैं या ऊपरी भाग में अर्धनग्न हैं।

दूसरे दल में एक नर्तकी को घेरे छः स्त्री गायिकाएँ मंडलाकार रूप में खड़ी हैं। नर्तकी के बाल कंधों पर लहरा रहे हैं। वह चुस्त कुर्ता तथा पतला पजामा पहने है। शेष छः गायिकाओं में से एक मृदंग बजा रही है, दो छोटे-छोटे मंजीरे बजा रही हैं और शेष तीन डण्डे बजा रही हैं। इनकी वेश-भूषा पहले वाली गायिकाओं के दल के समान ही है। इस चित्र में कुछ लेख दिया गया था परन्तु अब केवल 'क' स्पष्ट है। (देखिये रेखाचित्र—गायक दल)

**पाँचवां दृश्य**—पाँचवें चित्र में कम से कम सत्रह घुड़सवारों का एक दृश्य अंकित है। यह घुड़सवार बायीं ओर जा रहे हैं। वस्त्रों की तड़क-भड़क, घोड़ों की गति तथा राजकीय चिन्ह इत्यादि के कारण यह किसी राजा की शोभायात्रा या जुलूस का दृश्य प्रतीत होता है। घोड़ों का अंकन स्वाभाविकता से किया गया है। इस दल के चित्र में समस्त सवार चुस्त बाने के समान पोशाक पहने दर्शाये गए हैं और उनके सिर के पिछले भाग पर पीली या सफेद रंग की पगड़ी लगी है।

**छठा दृश्य**—छठे दृश्य में एक हाथियों का जुलूस दिखाया गया है। इस दल में छः हाथी और तीन घुड़सवार हैं, परन्तु घुड़सवारों में से अब केवल एक ही का चित्रण स्पष्ट दिखाई देता है। छठा दृश्य तोरण-द्वार के चित्रण से सातवें दृश्य से अलग हो जाता है। इस चित्र में एक व्यक्ति हाथ में कमल पुष्प धारण किये हाथी पर बैठा है, इसके सिर पर छत्र लगा है तथा पीछे एक अंगरक्षक चँवर झल रहा है।

**सातवां दृश्य**—सातवां दृश्य छठे दृश्य के विरोध में दूसरी ओर बनाया गया है। इसमें चार हाथी और तीन घुड़सवार अपने गन्तव्य स्थान तक आ गये हैं। हाथी विश्राम करने के लिए बैठ गए हैं। यहाँ पर दो पैदल आदमी हैं जिनके हाथ में तलवारें और भाले हैं। इन सब का ध्यान सामने के भवन पर केन्द्रित है। निकट ही आम के वृक्ष से नीला कपड़ा लटका है और नीचे जलपात्र तथा धर्मचक्र दर्शाये गए हैं। निकट ही एक केले का वृक्ष भी है जिसके नीचे बुद्ध बैठे हुए और एक शिष्य को उपदेश देते हुए अंकित हैं।

चौथी गुफा के उत्तर की ओर भी कुछ चित्रों के अवशेष है जो अधिक स्पष्ट नहीं हैं। छठी गुफा में गौतम बुद्ध के अनेक चित्र हैं, जिनमें 'उषनिश-बुद्ध' का सुंदर चित्र अवशेष मात्र रह गया है। इसी प्रकार इस गुफा की पाँचों भीतरी कोठरियाँ भी चित्रों से सजी हुई थीं। इन चित्रों की आकृतियाँ, भंगिमाएँ, अलंकरण तथा शैली अजन्ता के समान हैं, अतः इन चित्रों को अजंता शैली का माना गया है। आकृतियों के चुस्त कपड़े तथा शृंगार गुप्तकालीन मूर्तियों की याद दिलाते हैं।

बाघ गुफाओं में काले, सफेद तथा हिरौंजी के रंग के प्रयोग से उत्तम आलेखन बनाये गए हैं, जो लय तथा आकारों की पूर्णता में अजंता को मात करते हैं। इन आलेखनों में मनमुग्धकारी पक्षियों—शुक, सारिका, कुक्कुट, हंस, कोयल, मोर, सारस, चकोर तथा बत्तख आदि का कमल, कमलनाल, लताओं तथा पुष्पों के बीच-बीच में अंकन किया गया है। रंगीन चित्रों में नीले, लाल और पीले परस्पर विरोधी रंगों का प्रयोग किया गया है। रंगों की यहाँ दो शैलियाँ हैं जो सम्भवतः दो भिन्न-भिन्न कालक्रमों की परिचायक हैं।

## बादामी की गुफाएँ

वात्यपिपुरम् नामक स्थान का आधुनिक नाम बादामी है। बादामी की गुफाएँ बीजापुर जिले के अन्तर्गत आईहोल के निकट महाराष्ट्र प्रान्त में स्थित हैं। वात्यपिपुरम् पर्वतों के बीच

सुरक्षित रूप से बसा हुआ था और अपने तालाबों, मंदिरों तथा झीलों के कारण किसी समय एक सुंदर नगर रहा होगा। परन्तु आज यह सभी काल के आघातों से नष्ट हो चुके हैं। बादामी के मध्य में एक पत्थर की शिला पर अभिलेख उत्कीर्ण है जो पल्लव राजा नरसिंह वर्मन का है। इस लेख के अनुसार इस पल्लव-वंशीय राजा नरसिंह वर्मन ने महान चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय की राजधानी बादामी को ध्वस्त कर दिया था। बादामी के चार गुफा मंदिरों में शिल्प तथा चित्रकला के उत्तम उदाहरण सुरक्षित हैं।

दक्षिण में वाकाटक वंश के पश्चात् चालुक्य वंश का उदय हुआ था। चालुक्य वंश में पुलकेशिन का पुत्र कीर्तिवर्मन और कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशिन द्वितीय प्रतापी राजा हुए। मंगलेश राजा कीर्तिवर्मन का छोटा भाई था और पुलकेशिन द्वितीय के पश्चात् चालुक्य साम्राज्य का शासक बना। वह भवन तथा कला प्रेमी शासक था। उसके राज्यकाल में बादामी की चौथी गुफा बनकर पूर्ण हुई। बादामी की चौथी गुफा (मुख्य-मंडप) शिल्प-सज्जा, चित्रकारी तथा वास्तु के दृष्टिकोण से श्रेष्ठ है। इस गुफा में मंगलेश के शासनकाल के बारहवें वर्ष का एक लेख प्राप्त है, जिसका समय शाका ५०० अर्थात् ५७८-५७९ ई० है। इस अभिलेख में बादामी की इस गुफा के निर्माण के सम्बन्ध मे पर्याप्त सूचना दी गई है। इस लेख के अनुसार–विष्णु की प्रतिमा इस मुख्य-मंडप (चौथी गुफा) में स्थापित की गई और मंदिर में पूजा पाठ के लिये अनुदान स्वरूप 'लन्जीसवाड़ा' नामक ग्राम की जागीर इस मंदिर के प्रबंधन के लिये बाँधी गई थी। इस लेख के अनुसार यह गुफा मंगलेश ने बनवाई थी। बराह पैनल के समीप उत्कीर्ण इस लेख में इस प्रकार का संकेत है कि 'दर्शकों को मंगलेश की कला का रसास्वादन करने के लिये गुफा की छत, दीवारों तथा मूर्तियों की ओर देखना चाहिए।'

अजन्ता में उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है कि अजन्ता के चित्र वाकाटक राजाओं ने बनवाये। इसी प्रकार बादामी के अलंकरण सम्बन्धी अभिलेखों से स्पष्ट है कि–'मंगलेश के दरबारी चित्रकारों ने अपने से पूर्व के वाकाटक कलाकारों की शैली को अपनाया।'

बादामी के चित्रों की खोज का श्रेय स्टेला क्रैमरिश को है। पहले बर्गीज़ तथा बनर्जी ने इस गुफा के बाहरी भाग में चित्रों के धुंधले चिन्ह पाये थे। बादामी गुफा के चित्र ब्राह्मण मंदिरों के सबसे पहले प्राप्त चित्र उदाहरण माने जा सकते है। बादामी की इस गुफा में जो भव्य शिल्प तथा चित्रकारी के नमूने प्राप्त हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मंगलेश ने चित्रकारों को आश्रय दिया। सर्वप्रथम स्टेला क्रैमरिश ने इन चित्रों का अध्ययन किया और उन्होंने चित्रों के विषय को शिवविवाह से सम्बन्धित दृश्य बताया।" यह चित्र बहुत खराब अवस्था में है। श्री कार्ल खण्डालावाला ने १९३८ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'इंडियन स्कल्पचर एण्ड पेंटिंग', (बम्बई) में बादामी का एक रंगीन चित्र प्रकाशित किया।

बादामी के भित्तिचित्रों की प्रतिकृतियाँ ललित कला अकादमी के निमंत्रण पर भारत के प्रसिद्ध चित्रकार स्व० जे० एन० अहिवासी तथा उनके सहायकों ने तैयार कीं। यह

श्री कार्ल खण्डलावाला तथा श्री के० के० हैब्बर की देख-रेख में किया गया। यह प्रतिकृतियाँ राष्ट्रीय संग्रहालय-नई दिल्ली ने ललित कला अकादमी से प्रदर्शन हेतु मंगवायी और यहाँ वह जनता के लिये प्रदर्शित की गईं।

बादामी के मुख्य-मंडप (चौथी गुफा) की छत पर पैनलों में चार दृश्य बनाये गए हैं। इनमें से प्रथम दो ५'×५' आकार के हैं परन्तु दूसरे दो पैनल १', ५–३/८"×१',१०" आकार के हैं।

**प्रथम दृश्य**—यह दृश्य शिव-विवाह पर आधारित है। इस चित्र में एक विशाल महल के अन्तर्गत इन्द्र की सभा वैजयन्ता या देवताओं की सभा सुधर्मा का अंकन है। इस चित्र में इन्द्र की मुख्य आकृति नीलिमायुक्त हरे वर्ण की है और वह अपना एक पैर आसन पर रखे हैं तथा दूसरा पैर पदपीठा पर रखे आसीन हैं। इस आकृति का सिर नष्ट हो गया है। इसके दाहिने हाथ की उंगलियाँ कत्तकामुख मुद्रा में और बाएं हाथ की उंगलियाँ शिखरहस्त मुद्रा में बनायी गई हैं। इस आकृति की गरदन में कम्बुकन्ठा तथा कंधे पर मोतियों की लड़ियों से बना यज्ञोपवीत सुशोभित होता दर्शाया गया है। इस आकृति के बाएं कान का एक पत्राकार कुण्डल शेष रह गया है। इस आसनासीन आकृति के नीचे अनेक आकृतियाँ बैठी हैं। इन्द्र के पीछे पाँच चँवरधारणियों के दल में केवल एक जटाधारी पुरुष आकृति है, शेष सब स्त्रियाँ हैं। इस दल के ऊपर स्तम्भों पर आधारित दीर्घा में देवतागण राजसी ढंग से बैठे हैं। इस मुख्य आकृति से बायीं ओर चित्र में नर्तक-मंडली अंकित की गई है। इनमें दो नृत्य करती हुई आकृतियाँ बड़ी गतिपूर्ण मुद्रा में अंकित की गई हैं। इनमें से पुरुष नर्तक का मुख दर्शकों की ओर है। यह नर्तक चतुरा मुद्रा में नृत्य कर रहा है और उसका बायाँ हाथ दण्डहस्त मुद्रा में है और दाहिना हाथ कत्तकामुखमुद्रा में उठा चित्रित किया गया है। स्त्री नृतकी, जो नर्तक के सम्मुख है, का दाहिना हाथ दण्डहस्त मुद्रा और बायाँ हाथ कत्तकामुख हस्त मुद्रा में चित्रित है। पुरुष नर्तक के बाल जटाजूट आकार के हैं, उसके कानों में पत्र-कुण्डल चित्रित हैं और उसको प्रचलित आभूषण तथा वस्त्र, माला, अनन्त, कड़े तथा घुटनों तक धोती (आन्ध्रा-धोती) पहने दर्शाया गया है। स्त्री नर्तकी का वर्ण गहरा नीलिमायुक्त दर्शाया गया है। उसके बाल एक भव्य पगड़ीनुमा जूड़े में बँधे हैं, उसके कानों में पत्रकुंडल, भुजाओं पर अनन्त सुशोभित हैं। इन नर्तकों के समीप वाद्य-मंडली अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र बजा रही है। इस वाद्य मंडली में सब स्त्रियाँ हैं। इनमें से दो बाँसुरी वादक हैं, एक ढोलक तथा एक अंक्य-मृदंग बजाती आकृति है और एक ताल (मंजीरा) बजाती स्त्री की आकृति चित्रित की गई है। इस चित्र में अनुमानतः स्त्री नर्तकी उर्वशी अप्सरा है जिसके सम्मुख काली पुरुष आकृति स्वयं तँडु की आकृति है जो इन्द्र के सम्मुख अप्सरा के नृत्य कौशल का प्रदर्शन कर रहे हैं। कुछ दर्शक इस रंगारंग कार्यक्रम को ऊपर झरोखों में से देख रहे हैं।

**दूसरा दृश्य**—दूसरा चित्र एक राजमहल के कक्ष का दृश्य है। इस दृश्य में राजसी युगल का अंकन है। राजसी पुरुष महाराजलीला मुद्रा में अपना दाहिना पैर पदपीठा पर तथा बायाँ पैर आसन पर रखे, आसन पर विराजमान अंकित किया गया है। उसका बायाँ हाथ घुटने पर है और दाहिना हाथ त्रिपताका मुद्रा में है। उसके सिर पर ऊँचा मुकुट है तथा वह सामान्य आभूषण पहने है। यज्ञोपवीत उसके दाहिने कंधे से लहराकर लटक रहा है। उसके दाहिनी ओर मुकुट धारण किये अनेक युवराज धरती पर बैठे इस भव्य राजसी पुरुष के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे चित्रित किये गए हैं, परन्तु अधिकांश आकृतियाँ अस्पष्ट हैं और नष्ट हो चुकी हैं। इन आकृतियों के छोर पर एक स्त्री प्रतिहारी की आकृति है जो नीचे शरीर में टखनों तक अपारदीना जैसा वस्त्र पहने हैं और हाथ में दण्ड धारण किये हैं। इस राजसी आकृति के बायीं ओर प्रसाधिकाएँ या परिचारिकाएँ रानी की सेवा में खड़ी हैं, रानी के पास ही राजकुमार भी चित्रित है। यह रानी एक नीचे आयताकार पीठ वाले आसन पर बैठी चित्रांकित की गई है, इस आसन में तकिये लगे हैं। इस रानी की सेवा में राजा के समान चँवरधारणियाँ खड़ी हैं जिनके केश खुले (धामिला) या जटा रूप में बनाये गए हैं। इनमें से एक के हाथ में दण्ड है। रानी की मुद्रा मनोरम है। उसका दाहिना पैर पदपीठा पर है और बायाँ पैर मुड़ा हुआ है और आसन पर रखा चित्रित है। उसका दाहिना हाथ आसन पर है, परन्तु बायाँ हाथ सोचिमुद्रा में दर्शाया गया है। उसके कानों से पत्र-कुंडल लटक रहे हैं। उसकी भुजाओं में अनन्त तथा भुजबंद हैं और वह ग्रीवा में मालाएँ पहने हैं। उसके बाल धामीला प्रकार के हैं और लहराते चिकुर उसके माथे पर बनाये गए हैं। वह कमर से नीचे जांघों पर धारीदार अर्धरूका पहने हैं। इस चित्र में लाल रंग का स्वस्थ राजसी पुरुष पल्लव नरेश कीर्तिवर्मन है, जिसको रानी के साथ चित्रित किया गया है। रानी का वर्ण गौर है। इन दोनों के नीचे तीन सेनानायक बैठे हैं जिनमें से एक गौर, एक ताम्र तथा एक हरे वर्ण का है। ऐसा विचार किया जाता है कि मंगलेश ने अपने भाई राजा कीर्तिवर्मन, जिसको वह बहुत प्रेम करता था, की स्मृति में यह चित्र बनवाया।[१२] सम्भवतः यह राजा कीर्तिवर्मन के परिवार का चित्र है।

**तीसरा तथा चौथा दृश्य**—बादामी के इन दो खंडित दृश्यों में युगल विद्याधर बादलों में उड़ते हुए बनाये गए हैं। तीसरे दृश्य में विद्याधर तथा विद्याधरी अपने-अपने हाथ एक-दूसरे के गले में डाले हैं और उनके सिर पर मुकुट है। विद्याधरी के बाल धमीला ढंग में बंधे हैं और उसका रंग गहरा है परन्तु विद्याधर का वर्ण गौर दर्शाया गया है।

दूसरे युगल में आकृतियाँ अधिक सुंदर रूप में अंकित हैं। इस चित्र में विद्याधर कानों में कुण्डल पहने हैं परन्तु विद्याधरी के कान में कुण्डल नहीं हैं। विद्याधर का केश-विन्यास जटा-ढंग का है और कमल पुष्प से युक्त है। विद्याधरी वीणा बजा रही

हैं। इस दृश्य में पुरुष आकृति गहरे नीलिमायुक्त हरे वर्ण की तथा स्त्री आकृति गौर वर्ण की चित्रित की गई है।

## सित्तन्नवासल की गुफा

यह गुफा दक्षिण भारत तमिलनाडु राज्य के अन्तर्गत तंजौर के निकट पडूकोट्टाई से उत्तर-पश्चिम की ओर नौ मील की दूरी पर कृष्णानदी के तट पर सित्तन्नवासल में स्थित है। यह स्थान पल्लव-राज्य के मध्य में स्थित था और सम्भवतः इन चित्रों को पल्लव वंश के महान शासक राजा महेन्द्र वर्मा (६०० ई० से ६२५ ई०) ने बनवाया था।

सित्तन्नवासल की गुफा को सर्वप्रथम टी० ए० गोपीनाथ राव ने देखा और उन्होंने इन चित्रों को उतना ही प्राचीन माना जितनी प्राचीन यह गुफा है।

**सित्तन्नावासल के चित्र**—सित्तन्नवासल गुफा जैन मन्दिर है। यह मंदिर एक चट्टान को काटकर बनाया गया है। पहले यह गुफा-मंदिर पूर्णतया चित्रों से अलंकृत था, परन्तु अब चित्र केवल छत में तथा स्तम्भों के ऊपरी भागों में शेष रह गए हैं। यहाँ पर भारी ओसरे (बरामदे) की छत में एक कमलवन का आलेखन है। इस भित्तिचित्र में एक सरोवर का दृश्य है जिसमें कमल पुष्प खिले हैं। इस सरोवर के बीच में एक मछली, हाथी, हंस, भैंसे तथा तीन दिव्य आकृतियाँ चित्रित हैं। यह तीनों दिव्य व्यक्ति हाथों में कमल धारण किये हैं। इन तीनों आकृतियों में से दो का गहरा लाल रंग है और एक का तेज़ पीला रंग है। इनकी मुद्राएँ और अंग-भंगिमाएँ सुंदर हैं। चित्रकार ने रंगों का विधान सुकोमल, सुंदर और सरल लिया है। गोलाई लाने के लिए सुकोमल छाया का प्रयोग भी किया गया है। स्तम्भों पर नृत्य करती हुई बालाओं तथा कमल पुष्पों के आलेखन बने हैं। एक स्थान पर एक कुलीन पुरुष का चित्र है। उसके बाएँ कंधे के पीछे प्रफुल्ल मुखमुद्रा वाली एक महिला की आकृति बनायी गई है। अनुमानतः यह राजा महेन्द्र और उसकी रानी के चित्र हैं। यहाँ पर 'अर्द्धनारीश्वर' का एक उत्कृष्ट चित्र अंकित है। इस चित्र में महादेव को शक्तिशाली रेखाओं के द्वारा अंकित किया गया है और चित्र की शैली अजन्ता तथा बाघ की चित्रशैली के समान है। इस चित्र में महादेव जटाओं के मुकुट का जूड़ा लगाये हैं और कानों में पत्र-कुण्डल पहने हैं, उनके नेत्रों में दिव्य ज्योति और शक्ति है।

एक अन्य पुरुष आकृति का चित्र जिसकी ग्रीवा मोटी बनायी गई है अनुमानतः एक गंधर्व का चित्र है। उसके हाथ में कमल है। इस आकृति के नेत्र, अंग-भंगिमाएँ तथा हस्त-मुद्राएँ कलाकार की शिल्प-कुशलता की द्योतक हैं। यहाँ पर नर्तकियों के भी अनेक सुंदर चित्र अंकित हैं। स्तम्भ पर बने एक चित्र में नृत्य की लय में मग्न एक नृत्यांगना अप्सरा का चित्रण किया गया है। इस चित्र में नृतकी अप्सरा की गति में और वर्ण सम्बन्धी योजना में कलात्मक दृष्टिकोण दिखायी पड़ता है। इस अप्सरा की ग्रीवा, भुजाओं, कानों आदि में रत्न-जटित सुंदर आभूषण चित्रित हैं। सौन्दर्य की

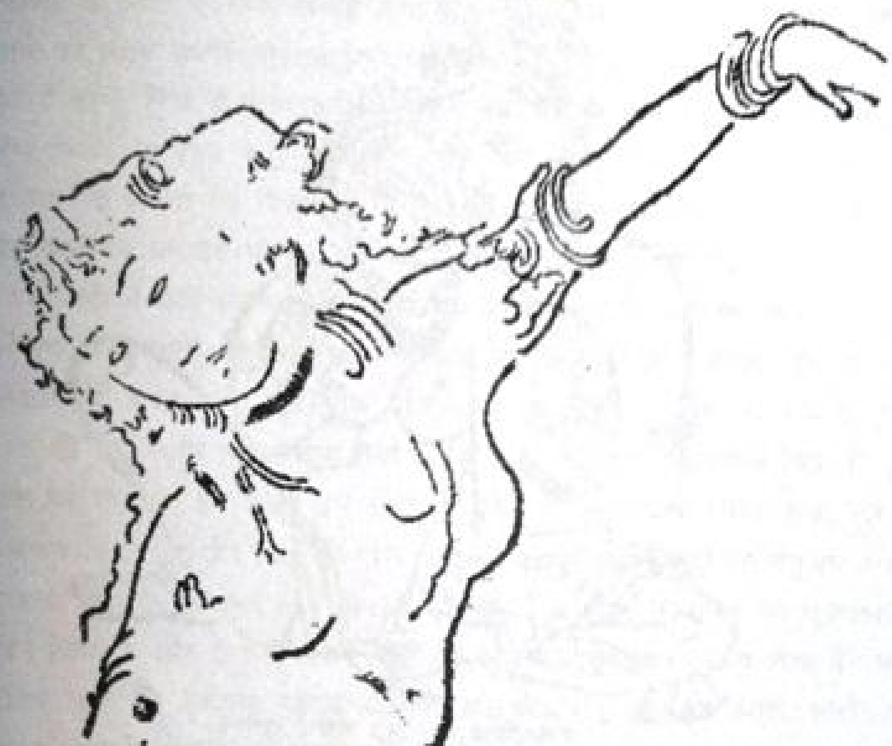

*रेखाचित्र सं० १२*

*अप्सरा (भित्तिचित्र) (सित्तन्नवासल गुफा सातवीं शताब्दी)*

साक्षात् मूर्ति के समान इस अप्सरा का पांडु-वर्णी शरीर कांतिवान आभा से जगमगा रहा है। (देखिये रेखाचित्र–'अप्सरा'-सित्तन्नवासल)। सित्तन्नवासल गुफाओं के चित्रों की शैली अजन्ता के समान ही है। इस प्रकार की चित्र शैली अजन्ता की श्रेष्ठ चित्रकारी के समय में ही दिखायी पड़ती है। अतः इन गुफाओं के चित्रों की शैली को अजन्ता की परिपक्व शैली का रूप माना जाता है।

## सिगिरिया की गुफाएँ

भारतीय बौद्ध-भिक्षु धर्म के प्रचार हेतु सुदूर पूर्वी तथा दक्षिणी देशों की ओर गए और उनके साथ ही भारतीय-चित्रकारी, धर्म तथा दर्शन आदि भी उन देशों में पहुँचा। श्रीलंका में भी इसी प्रकार भारत की अजन्ता शैली की चित्रकला इन्हीं धर्म-प्रचारकों के साथ पहुँची। श्रीलंका में सिगिरिया या सिंहगिरिया नामक गुफाओं में अजन्ता की चित्रशैली के दर्शन होते हैं।

**सिगिरिया गुफाओं का समय**–अजन्ता और बाघ की गुफाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यथा समय पर समुचित सुरक्षण की शीघ्र व्यवस्था न होने के कारण उनके चित्र नष्ट हो गए, परन्तु श्रीलंका-द्वीप की सरकार ने सिगिरिया गुफाओं की

चित्रकारी की देख-रेख ठीक प्रकार से की और तुरन्त सुरक्षण की व्यवस्था जुटायी। इस प्रकार यह बहुमूल्य चित्र नष्ट होने से बच गए।

ये गुफाएँ कोलम्बो से लगभग १०० मील की दूरी पर स्थित सिंहगिरि कस्बे के समीप जंगल में एक एकाकी छः सौ फुट ऊँची पहाड़ी, जो मीनार के समान खड़ी है, की तलहटी के उथले भाग में हैं। यह पहाड़ी खुले सघन जंगली प्रदेश में खड़ी है। इसके समीप में दो चित्रस्त खोहे हैं। यह चित्र राजा कश्यप के समय के माने जाते हैं। राजा कश्यप का राज्यकाल ४७६ ई० से ४६७ ई० तक माना जाता है। श्रीलंका की सरकार ने १८६५ ई० में श्री एच० सी० पीवेल (पुरातत्व विभाग) के कमिश्नर के निर्देशन में सिगिरिया गुफाओं के जीर्णोद्धार तथा सुरक्षा की व्यवस्था प्रारंभ करायी। इस योजना के अधीन चित्रों के ऊपर तार की जाली लगाकर उनको सुरक्षित कर दिया गया। यहाँ पर जो दो असंयत प्राकृतिक खोहे चट्टानों में हैं, अधिकांश चित्र इन्हीं दो गुफाओं में सुरक्षित हैं। इन दोनों खोहों में कुल छः गुफाएँ हैं, परन्तु चित्र अवशेष केवल चार गुफाओं में प्राप्त हैं, जिनमें से समुचित और महत्त्वपूर्ण चित्र केवल उपरोक्त दो गुफाओं में शेष रह गए हैं। इन गुफाओं को विन्सेंट स्मिथ ने 'ए' तथा 'बी' के नाम से सम्बोधित किया है। वास्तव में दो प्राकृतिक कक्षों से एक गुफा बन जाती है जो ६७–१/२ फुट लम्बी है और दो भागों में एक टेढ़े-मेढ़े चट्टानी किनारे से विभाजित है। इस प्रकार प्रथम कक्ष 'ए' २६-१/४ फुट और द्वितीय कक्ष 'बी' ४१-१/४ फुट लम्बा है।

यहाँ पर कुल २१ स्त्रियों के चित्र हैं। यहाँ कुल २२ आकृतियों में से पाँच के चित्र 'ए' गुफा में और सत्रह चित्र 'बी' गुफा में सुरक्षित हैं। यह चित्र मानवाकार या कुछ छोटे हैं।

१८८६ ई० में श्री ए० मरे ने कठिन परिश्रम के द्वारा तेरह आकृतियों की पेस्टिल रंगों तथा रंगीन छाया चित्रों के द्वारा प्रतिलिपियाँ तैयार की जो कोलम्बो संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

सन् १९६७ ई० में १४ अक्टूबर की रात को कुछ अवांछनीय तत्त्वों ने इन चित्राकृतियों को नष्ट किया और बहुत हानि पहुँचायी। एक चित्र तो दीवार पर से उखाड़कर ही नष्ट कर दिया।

**चित्रण-विधि तथा शैली**—चित्रों की लिखाई सावधानी से तैयार किये गए धरातल पर की गई है। यहाँ धरातल का पलस्तर लगभग 3/4 या १/२ इंच मोटा है और अच्छे चूने से तैयार किया गया है। इस पलास्तर में खड़िया-मिट्टी (Kaolin) तथा चावल की भूसी और कदाचित नारियल की जूट को मिलाया गया है। श्री बेल का मत है कि–'यह चित्र सूखे धरातल पर टेम्परा रंगों में बनाये गए हैं, परन्तु अजन्ता की शैली से अधिक भिन्न नहीं हैं।' यहाँ पर चित्रकार केवल तीन रंगों–लाल, पीले तथा हरे के प्रयोग तक सीमित रहा है। नीले रंग का प्रयोग यहाँ नहीं दिखाई पड़ता है।

**सिगिरिया के चित्र**—एक चित्र में एक जुलूस का दृश्य है, जिसमें कुलीन महिलाएँ हाथों में पुष्प लिये परिचारिकाओं सहित बौद्ध-मठ की ओर पूजा करने जा रही हैं। सारी

(48) (57)



स्त्रियाँ कमर के नीचे वस्त्रों को धारण किये हैं और कुछ स्त्रियों ने ऊपर कोहनी तक आस्तीनदार चोली पहन रखी है। कुछ स्त्रियाँ अर्द्धनग्न भी चित्रित की गई हैं।

इन कुलीन महिलाओं का चित्रण पीले या नारंगी रंग से किया गया है। परन्तु दासियों का गहरा वर्ण हरितमा युक्त है। समस्त स्त्रियाँ आभूषणों तथा अलंकरणों से सुसज्जित हैं। इन चित्रों के नीचे की ओर बादल बनाये गए हैं, परन्तु श्री बेल का कहना है कि–नीचे के भाग में चट्टानें टेढ़ी-मेढ़ी तथा खुरदुरी हैं, जिन पर चित्रकार आकृतियों के पैर नहीं बना सकता था, इस कारण बादल बनाये गए हैं। परन्तु यह बात संगत प्रतीत नहीं होती, वास्तव में इन आकृतियों को दिव्य और भव्य रूप प्रदान करने के लिए इनको बादलों के मध्य बनाकर भव्य रूप प्रदान किया गया है। भारतीय पद्धति के समान ही चित्र की आकृतियों की सीमारेखाएं लाल या काले रंग से बनायी गई है और आकृतियों में सपाट रंग का प्रयोग किया गया है। एक अपूर्ण चित्र उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सीमारेखा के आधार पर ही पूर्णतया रंगों का प्रयोग नहीं किया जाता था।

ये कृतियाँ राजा कश्यप की समकालीन हैं, इस कारण इनका समय पाँचवीं शताब्दी ईसवी माना जाता है। अतः ये चित्र अजन्ता के समकालीन ठहरते हैं। अजन्ता की दूसरी गुफा की एक महिला की आकृति, जो कमल पुष्प लिये हुए चित्रित है, सिगिरिया के एक महिला चित्र से बहुत मिलती-जुलती है।

श्रीलंका द्वीप में भित्तिचित्रों के कई अन्य प्राचीन उदाहरण भी प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के विशेष उदाहरण अनुरुद्धपुर में प्राप्त हुए हैं। यहाँ के चित्रों की शैली भी अजन्ता पर आधारित है परन्तु यहाँ पर सफेद, लाल, पीले और नीले रंग का प्रयोग भी किया गया है।

## अजन्ता तथा अन्य गुफाओं के चित्रों की शैली

अजन्ता के भित्तिचित्रों की शैली बाघ, बादामी, सित्तन्नवासल तथा सिगिरिया गुफामंदिरों के चित्रों में अपने भव्य रूप में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार यह चित्रण-शैली व्यापक रूप से प्रचलित हुई। अनेक विद्वानों ने अजन्ता शैली को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। परसी ब्राउन ने अजन्ता शैली को बौद्ध धर्म से अत्यधिक सम्बन्धित होने के कारण बौद्ध कला के नाम से पुकारा है। रायकृष्ण दास ने गुप्त राजाओं के भारी प्रभाव के कारण इस कला-शैली को गुप्तकला या गुप्त शैली के नाम से पुकारा है।

**अजन्ता शैली की विशेषताएँ**–अजन्ता की गुफाओं जैसी चित्रकला यद्यपि अनेक गुफाओं से प्राप्त हुई है परन्तु इस शैली का सर्वाधिक परिमार्जित और पूर्ण विकसित रूप अजन्ता की गुफाओं से ही प्राप्त हुआ है। अतः अजन्ता के चित्रों को ही इस शैली का प्रतिनिधि रूप मानकर शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन करना अधिक उपयुक्त होगा।

**चित्रों का विषय**–यद्यपि अजन्ता तथा बाघ के चित्रों में भगवान बुद्ध का अंकन है परन्तु बादामी तथा सित्तन्नवासल की गुफाओं में क्रमशः ब्राह्मण या जैन धर्म से सम्बन्धित

*रेखाचित्र सं० १३ गंधर्व युगल*
*(अजन्ता गुफा नं०-१, सातवीं शताब्दी)*

देवी-देवताओं का अंकन किया गया है। इस प्रकार यह शैली एक धर्म विशेष तक सीमित नहीं रही बल्कि विभिन्न समुदायों की कला के रूप में व्यापक रूप धारण कर गई। यद्यपि इस शैली के विषय धार्मिक हैं, परन्तु फिर भी चित्रकार ने जीवन और संसार में रुचि प्रदर्शित की। अजन्ता के चित्रों में झूला झूलती युवती, मरती राजकुमारी तथा नृत्य करती बालाओं का अंकन ही नहीं वरन् कई अन्य सांसारिक पक्षों का अंकन हुआ है। इसी प्रकार बादामी तथा सित्तन्नवासल में भी 'विरहणी' तथा 'नर्तकी' आदि का अंकन है। धार्मिक विषयों के साथ चित्रकार शृंगार तथा जन-जीवन सम्बन्धी विषयों की उपेक्षा नहीं कर सका है और इस आधार पर यह शैली धर्मनिरपेक्ष है। (देखिए रेखाचित्र—'गंधर्व युगल')

**जातक कथाएँ**—जातक कथाओं का अर्थ है पूर्वजन्म की कथाएँ। यह जातक कथाएँ बुद्ध के जन्म-जन्मान्तर की कथाएँ हैं, जिनको उन्होंने स्वयं अपने उपदेशों में सुनाया और बताया कि कई जन्मों से वह इसी प्रकार अनेक रूपों में अवतीर्ण होते आ रहे हैं। यद्यपि अजन्ता में जीवन तथा धर्म दोनों से सम्बन्धित चित्र हैं परन्तु फिर भी विशेष रूप से जातक कथाओं या बुद्ध के जीवन की कथाओं का अंकन है। अतः अजन्ता चित्रावली को बुद्ध के प्रति समर्पण मानना उपयुक्त होगा।

**चित्रों की विशालता और योजना**–अजन्ता की गुफाओं के चित्रों ने या अन्य गुफाओं के चित्रों ने आज अपनी विशालता और सुंदर योजनाओं के कारण समस्त संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। अधिकांश चित्र मानवाकार या कुछ छोटे हैं परन्तु चित्र के मुख्य व्यक्ति को कुछ बड़ा बनाया गया है। इस प्रकार चित्र का प्रमुख व्यक्ति या चित्र का नायक कुछ बड़े आकार का होने के कारण सरलता से पहचाना जा सकता है। चित्रों की योजना सुंदर और सुव्यवस्थित है। चित्रों के चारों ओर आलेखन बनाकर योजना को अधिक पुष्ट बना दिया गया है। प्रमुख घटना को चित्र योजना में ऐसा स्थान दिया गया है कि दर्शक की दृष्टि सर्वप्रथम चित्र योजना के गर्भभाग पर पड़ती है। (देखिए रेखाचित्र संख्या ८) यद्यपि चित्रों की योजनाएँ अलंकारपूर्ण, सरल और ज्यामितिक योजना पर आधारित हैं, फिर भी चित्र के प्रमुख व्यक्ति को ऐसे स्थान पर संजोया गया है कि दर्शक की दृष्टि सर्वप्रथम चित्र के मुख्य व्यक्ति पर ही पड़े। इस प्रकार इस शैली में 'दृष्टि के केन्द्रत्व' के सिद्धान्त का सुंदरता से पालन किया गया है। चित्र की गौण कथाओं या पात्रों को उनके प्रसंगानुकूल स्थानों पर रखा गया है। अजन्ता के चित्रकार ने संयोजन सम्बन्धी सिद्धान्तों का कुशलता से पालन किया है और उन्होंने अपने चित्रों की योजनाओं में जीवन डाल दिया है। प्रायः महात्मा बुद्ध की विशाल सक्रिय आकृति को केन्द्रबिन्दु मानकर उसके चारों ओर सहायक आकृति-समूहों की रचना की गई है।

**छतों के आलेखन**–इस समय जब आधुनिक यूरोप के देशों में चित्रकला का विकास भी नहीं हुआ था, हमारे देश में चित्रकला विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी। भारत में भित्तियों के अलंकरण तक ही चित्रकला सीमित नहीं रही परन्तु छतों पर भी चित्रकारी करने की परम्परा प्रारम्भ हो गई थी। यों तो सर्वप्रथम जोगीमारा की छत पर भी चित्रकारी का काम किया गया परन्तु विधिवत रूप से सर्वप्रथम अजन्ता में छतों पर चित्रकारी की गई। चित्रकारों ने छतों पर जलचरों, पक्षियों और कमल लताओं के सुंदर आलेखनों का अंकन किया है। (देखिए रेखाचित्र–'अलंकरण अभिप्राय') इन पक्षियों तथा जलचरों के अतिरिक्त गंधर्व तथा विद्याधर युगल भी बादलों के बीच-बीच में बनाये गए हैं। छतों पर जिस पलस्तर का प्रयोग किया गया है उसमें धान की भूसी का प्रयोग किया गया है जिससे यह पलास्तर छत्तों पर ठीक प्रकार चिपक गया है। अजन्ता में चित्रों के पलस्तर बनाने की विधि का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। छतों पर आलेखन बनाना भित्ति पर चित्र बनाने से अधिक कठिन कार्य था क्योंकि छत्तों पर अलंकरण करने के लिए चित्रकारों को मचान बनाकर, मचान पर पीठ के बल लेटकर काम करना पड़ता था। इन आलेखनों में इतनी पूर्णता और सुंदरता है कि चित्रकार की कठिन स्थिति और असहाय अवस्था का ज्ञान तक नहीं होने पाता है।

**आलेखन**—यदि अजन्ता को आलेखनों की खान कहा जाय तो अनुचित न होगा। अजन्ता के समान बाघ गुफाओं में भी आलेखनों का अत्यधिक महत्त्व है और किसी सीमा तक बाघ के आलेखन अजन्ता को मात कर गए हैं। रिक्त स्थानों, वस्त्रों, मकानों, मुकुटों, आभूषणों आदि में आवश्यकतानुसार आलेखन बनाये गए हैं। इन आलेखनों में चित्रकार ने हाथी, बंदर, वृषभ, मीन, मकर, मृग, महिष, हंस, तोता, बत्तख, कमल, कुमुद आदि सुंदर पशु-पक्षियों, पुष्पों तथा लताओं का प्रयोग किया है। यह आलेखन, बलवती रेखा के अनन्त प्रवाह, गति संतुलित-योजना और छन्दमय अभिप्रायों की लयात्मक पुनरावृत्ति के कारण शक्तिशाली बन गए हैं। आलेखनों के सुंदर उदाहरण अजन्ता की पहली गुफा में प्राप्त हैं। इन आलेखनों के चित्रण का समय सातवीं शताब्दी का मध्य माना जा सकता है (देखिये रेखाचित्र—'अलंकरण अभिप्राय') इन आलेखनों को काली तथा लाल (हिरौजी की) पृष्ठभूमि पर पहले सफेद रंग से बनाया गया है, उसके पश्चात पारदर्शी रंगों का प्रयोग किया गया है। बाघ गुफाओं में यह आलेखन काले तथा लाल रंग से ही बनाये गए हैं। यह आलेखन आलंकारिक है परन्तु इनमें संगीत की लय और नृत्य की गति विद्यमान है। इन आलेखनों में लम्बी अटूट प्रवाहपूर्ण रेखाओं का प्रयोग है। इन आलेखनों में व्यवस्था सुंदर है और कहीं भी आवश्यकता से अधिक स्थान खाली नहीं छोड़ा गया है और उचित अन्तराल-व्यवस्था करने के कारण ये आलेखन संतुलनपूर्ण, ठोस और प्रभावशाली हैं।

**आलंकारिकता**—पूर्वी देशों की चित्रकला आलंकारिक मानी गई है, जबकि पाश्चात्य देशों ने यथार्थता को अपनी कला का उद्देश्य माना। इस प्रकार एशिया की अधिकांश कला आलंकारिक और आध्यात्मिक बन गई। भारतवर्ष में विकसित अजन्ता की कला विशेष रूप से आलंकारिकता और आध्यात्मवाद के कारण सम्पूर्ण एशिया की एक उत्कृष्ट कला बन गई। अजन्ता की चित्रकारी से आलंकारिकता का चरम विकास दिखाई पड़ता है। इस आलंकारिकता को प्राप्त करने के लिए चित्रकार ने ज्यामितीय आकारों की सहायता ग्रहण की है। ज्यामितीय आकारों के संयोग से चित्रकार ने यथार्थ को एक आदर्श और काल्पनिक रूप प्रदान किया है। इस प्रकार यथार्थ और ज्यामितीय गोलाई युक्त आकारों के सम्मिश्रण से मौलिक तथा आलंकारिक रूपों का सर्जन करना कलाकारों की एक महान विशेषता है। दूसरी ओर अजन्ता के कलाकारों ने आकृतियों को सरलतम रूपों में बाँधने की सफल चेष्टा की है। सरल तथा आलंकारिक आलेखनों में कलाकारों ने अपनी कल्पना तथा भावना की मधुर और शृंगारमय लड़ी को जोड़ दिया है। अतएव इस शैली का आलंकारिक पक्ष निर्जीव नहीं होने पाया है, वरन् उसमें भावना, आत्मा और नैसर्गिक कल्पना का सजीव और उज्जवल रूप दिखाई पड़ता है।

**रेखा**—भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों की आलंकारिक चित्रकला ने विशेष रूप में रेखा को ही ग्रहण किया है किन्तु रेखा के सर्वोत्तम उदाहरण अजन्ता की कला में ही प्राप्त होते हैं। चित्रकार ने निपुणता के साथ आवश्यकतानुसार अपनी रेखा को कोमल, कठोर, पतला या मोटा बनाया है। इस शैली में गोलाई या डौल-डौल को भी रेखा के द्वारा प्राप्त नहीं किया

गया है, बल्कि स्थितिजन्य ऋजुता, बल, उभार, अलंकरण तथा कई अन्य विशेषताओं को रेखा द्वारा प्राप्त किया गया है। मानव के भिन्न-भिन्न रूपों, चरित्रों तथा भावों को रेखा के द्वारा ही सफलता से अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार की भावाभिव्यंजक रेखा का उदाहरण अजन्ता की पहली गुफा के अवलोकेतेश्वर चित्र में प्राप्त है, इस चित्र में सिद्धार्थ की मुखमुद्रा में दुख, चिंतन तथा शोक का भाव केवल एक रेखा से ही अंकित कर दिया गया है। अजन्ता में लगभग बीस प्रकार की रेखा शैलियाँ मिलती हैं। इसी कारण परसी ब्राउन ने पूर्वी देशों की चित्रकला को विशेष रूप से रेखा की चित्रकला माना है। जबकि पाश्चात्य कला छाया-प्रकाश प्रधान है। इस शैली में अधिकांश रेखाएँ अटूट, प्रवाहमय और भावप्रण है। भारतीय रेखा चीन की कोणदार सपाट रेखा से भिन्न है। कभी-कभी अजन्ता के कलाकार ने आकृतियों की दोनों भृकुटियों को एक ही अटूट रेखा से बना दिया है। (देखिए रेखाचित्र—'बोधिसत्व पद्मपाणि')

**सरलता**—अजन्ता के चित्र सरल रूपों (आकारों), सपाट रंगों और सरल रेखाओं पर आधारित हैं। सरल आकारों में गोलाई या डौल लाने का क्षीण प्रयास किया गया है। बाल, कपड़ों की सिलवटें, आभूषण आदि सभी को चित्रकार ने सरलतम रेखाओं में बाँधने की चेष्टा की है। चित्रों की योजना सरल होते हुए भी प्रभावपूर्ण और चित्ताकर्षक है। कभी-कभी दोनों भृकुटियों को एक ही सरल रेखा से अंकित किया गया है। जिस प्रकार चेहरे की बाहरी सीमा सरल ढंग से बनायी गई है उसी प्रकार विविध आकृतियों को सरल रूप और सपाट आकार प्रदान किया गया है। ये सीमा रेखाएँ गोलाई युक्त हैं और कम श्रम से बनायी गई हैं। (देखिए रेखाचित्र—'पद्मपाणि')

**हस्तमुद्राएँ तथा अंग-भंगिमाएँ**—हस्त-मुद्राओं तथा अंग-भंगिमाओं के कौशल से अजन्ता के कलाकार ने चित्रों में अपनी समस्त भावनाएँ ऐसे सजीव ढंग से डाल दी है कि ये मूक चित्र भी बोलने से लगे हैं। कलाकार ने समकालीन नृत्यकला की प्रचलित हस्तमुद्राओं का प्रयोग किया है जिनमें अत्यधिक नाटकीयता और लाक्षणिकता है। वास्तव में चित्रकार ने बुद्ध तथा अन्य देवी-देवताओं को नैसर्गिक रूप प्रदान करने के लिए नृत्य की मुद्राओं को अधिक उपयुक्त समझा क्योंकि इन मुद्राओं से भव्यता और भावाभिव्यक्ति में अपूर्व शक्ति आ गई है। इसके परिणाम स्वरूप समस्त पात्रों में वह दिव्य रूप प्रतिबिम्बित होने लगा जिसकी आवश्यकता थी। साधारण मनुष्य और महान आत्मा के अंतर को व्यक्त करने के लिए भी नृत्य की मुद्राएँ बहुत उपयुक्त थीं। अतः कलाकार ने बुद्ध जैसी महान आत्मा के अंकन में भेद स्थापित करने के लिए संगीतपूर्ण मुद्राओं का आश्रय लिया। (देखिए रेखाचित्र—'गायक दल' तथा 'अप्सरा', सित्तन्नवासल)

इस शैली में विभिन्न आकृतियों के निर्माण में स्वाभाविक हस्त-मुद्राएँ प्रयोग की गई हैं जिनमें पात्र पकड़े हाथों की मुद्राएँ, शान्ति की हस्त-मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा, शिखर हस्त मुद्रा, कत्तकामुख मुद्रा, दण्ड हस्त मुद्रा, नीलकमल धारण किये हुए भगवान बुद्ध की

हस्तमुद्रा, वैराग्य सूचक साधु की हस्त मुद्रा सुंदर ही नहीं वरन् भावपूर्ण भी है। हस्तमुद्राएँ भाषा के समान समस्त चित्र की कथा को व्यक्त कर देती हैं।

भाव प्रदर्शन की दृष्टि से अंग-भंगिमाओं का चित्र की लिखाई में विशेष महत्त्व है। अजन्ता के चित्रकारों ने स्त्रियों को सुकोमल लतिका के समान लचकदार भंगिमाओं में अंकित करके अपनी कल्पना ओर छन्दमय बुद्धि का परिचय दिया है। अजन्ता के चित्रों में 'महाप्रजापति' की भंगिमा दर्शनीय है, जिसमें वे एक तमाल-लतिका के समान स्तम्भ के सहारे अपना बायाँ पैर मोड़े खड़ी हैं। मुड़े हुए पैर वाली खड़ी आकृति के त्रिकोण मुड़े हुए पैर से स्तम्भ की लम्बवत् सीधी रेखाओं की नीरसता समाप्त हो गई है। वक्ष की गोलाई के पश्चात् कमर की लिखाई में लचक के साथ भंगिमा पर रहस्य छिपाये अजंता के चित्रकार ने अनेक स्त्री आकृतियों का निर्माण किया है। प्रत्येक पात्र या पात्री की भंगिमा में अत्यधिक स्वाभाविकता और सजीवता है। भंगिमाएँ आकर्षक और प्रभावपूर्ण हैं, जैसे—'मरती राजकुमारी', 'अवलोकेतेश्वर', 'झूला-झूलती युवती' तथा 'मार-विजय' में बुद्ध की ध्यान मुद्रा उत्तम है। हस्तमुद्राओं और अंग-भंगिमाओं की भव्यता को ठीक अनुपात तथा सरल सौन्दर्य ने और अधिक भावाभिव्यंजक बना दिया है। आकृतियों की विभिन्न प्रकार की भंगिमाएँ बनाते समय कलाकार ने मांसिलपेशियों तथा अस्थिपंजरों का पूर्ण ध्यान रखा है। किसी भी आकृति की भंगिमा से उसकी शारीरिक रचना में विकृति नहीं होने पाई है इस कारण आकृतियों में सजीवता और स्वाभाविकता है।

**वर्ण विधान**—काल के क्रूर आघातों ने प्राचीन चित्रकारी का बहुत कुछ वर्ण सौष्ठव तथा लावण्य छीन लिया है, फिर भी आज तक अजन्ता के चित्रों की आभा फीकी नहीं पड़ी है। अजन्ता के चित्रों में सुंदर वर्ण छटा यत्र-तत्र बिखरी दिखाई पड़ती है। यद्यपि इन चित्रों की चमक पर्याप्त धूमिल पड़ चुकी है तथापि रंग जानदार प्रतीत होते हैं। चमकदार नीले हरे और बैंगनी रंग अपनी पूर्ण आभा में आज भी जगमगाते हैं। शरीर तथा कपड़ों का रंग लावण्ययुक्त और संगत है। अजन्ता के कुछ आरम्भिक चित्रों को छोड़कर सोलहवीं तथा सत्रहवीं गुफा में अजन्ता के चित्रकारों ने गहरी पृष्ठभूमि पर हल्के वर्ण विधान में आकृतियाँ बनाने की प्रवृत्ति दिखाई है, परन्तु दूसरी ओर हल्की पृष्ठभूमि पर गहरी आकृतियों के बनाने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है जो यूरोप की वेनिस-चित्रकला शैली (संस्थान) के समान है। चित्रकार दर्शक के ध्यान को चित्र की ओर आकृष्ट करने के लिये बहुत जागरूक रहा, इस कारण उसने मानवाकृतियों के बालों में काले रंग का प्रयोग किया है, जिससे रूप और लावण्य की वृद्धि हुई है और इच्छित प्रभाव उत्पन्न हो गया है।

अजन्ता के चित्रकार की वर्ण विधान सम्बन्धी शिल्प कुशलता का एक सुंदर उदाहरण सत्रहवीं गुफा के एक चित्र 'महाहंस जातक' में देखा जा सकता है। यह चित्र अपने वर्ण विधान के कारण बहुत विख्यात हो चुका है और रंग की योजना के आधार पर इसको

अजन्ता का सर्वश्रेष्ठ चित्र माना जाता है। इस चित्र में कलाकार ने पूर्णतः स्वतंत्र रूप से रंगों का चयन किया है। इस चित्र में राजा एक ऊँचे सिंहासन पर बैठा है और चारों ओर अनुचर खड़े हैं। इसमें से एक अनुचर राजसी छत्र तथा दूसरा चँवर धारण किये है और तीसरा अपने रंग के कारण हब्शी जैसा प्रतीत हो रहा है। यह हब्शी राजा के नीचे पैरों पर बैठा है। उसका वर्ण गहरा लाल है, जो निश्चित रूप से राजसी बहेलिया है, पीछे आलेखनों से सुसज्जित कनात खड़ी है। चित्र की अग्रभूमि में एक तालाब है जिसमें कमलपुष्प है तथा जल के पक्षी जल-विहार कर रहे हैं। इस चित्र में श्वेत रंग के शीतल प्रयोग से चित्रकार ने चित्र को एक उत्तम संतुलन प्रदान किया है। इस चित्र में विभिन्न आकृतियों के शरीर मे गुलाबी, भूरा, गहरा लाल तथा टेरावर्ट (गहरा गंदा हरा) रंग लगाया गया है। इस चित्र में गहरी पृष्ठभूमि पर, जो लगभग काली है, हल्के रंग की आकृतियाँ बनायी गई हैं। इस गहरे रंग की पृष्ठभूमि पर विभिन्न बलों और रंगों में विभिन्न वस्तुएँ बनायी गई हैं जिससे चित्र में कठोरता नहीं आने पाई है। चित्र के निचले भाग में संगत हरे रंगों का सफेद और लाल रंगों के साथ प्रयोग है। इस चित्र में अजन्ता के कलाकार ने नाटकीयता के प्रभाव को भी रोचक वर्ण-विधान के द्वारा प्रदर्शित किया है। कपड़ों, आभूषणों तथा अन्य साज-सज्जा में उपयुक्त तथा रोचक वर्णविधान है।

भित्तिचित्रण में गिने चुने प्राकृतिक खनिज रंगों का प्रयोग ही होता है ताकि वे चूने के क्षारात्मक प्रभाव से सुरक्षित रह सकें। इस शैली के चित्रों में जिन रंगों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया गया, उनमें सफेद, लाल, भूरे से बने विभिन्न हल्के तथा गहरे रंग हैं। स्थानीय हरे रंग का प्रयोग किया गया है जो तनिक गंदा रंग है। अजन्ता तथा बाघ में विशेष रूप से नीले रंग का प्रयोग है। सफेद रंग प्रायः अपारदर्शी है और उसको चूने या खड़िया से बनाया गया है। लाल तथा भूरे लोह (अयस्क) से प्राप्त खनिज रंग हैं। हरा रंग एक स्थानीय अयस्क (खनिज) से बनाया गया है जो टेरावर्ट (Terreverte) है। नीला रंग फारस से आयात किये हुए लेपिसलाजुली (Lapis-Lazuli) एक बहुमूल्य पत्थर को घिसकर बनाया गया है। शेष रंगों में पीला (रामरज), गहरा लाल (हिरौंजी तथा गेरुआ खनिज) स्थानीय हैं। चमकदार पीले रंग के प्रयोग के लिए अनुमानतः प्राकृतिक रूप में संखिया से उपलब्ध पीले रंग का प्रयोग है (Natural arsenic sulphide)। रंगों को चावल के माँड़ तथा वज्रलेप (सरेस) में मिलाया जाता था।

**परिप्रेक्ष्य**—(Perspective) परिप्रेक्ष्य या अंग्रेजी शब्द पर्सपेक्टिव के दो पक्ष माने गये है, जिसमें प्रथम दृष्टि सम्बन्धी (Visual Perspective) और द्वितीय मानसिक परिप्रेक्ष्य (Mental perspective) है। अजन्ता के चित्रकारों ने भावना और कल्पना के महत्त्व को स्थापित करने के लिए मानसिक परिप्रेक्ष्य को ही उपयुक्त समझा। अधिकांश पाश्चात्य कला पारखियों ने साधारण दृष्टि-ज्ञान या दृष्टिक्रम (Visual perspective) के अभाव में इन चित्रों की आलोचना की है जो उनकी भारी भूल है, क्योंकि आज यूरोप में

इसी भावनात्मक या मानसिक परिप्रेक्ष्य की ओर बल दिया जा रहा है। कलाकार ने इसी मानसिक परिप्रेक्ष्य से अपनी भावनाओं जैसे श्रद्धा, घृणा, क्रोध आदि भावों को साधारण दृष्टा तक पहुँचाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कलाकारों ने चित्र में प्रयुक्त अनेक आकृतियों को सामान्य अनुपात से अधिक बड़ा या छोटा बनाकर उनके पद, महत्त्व तथा आध्यात्मिक उत्थान को व्यक्त किया है। इस प्रकार का उत्तम उदाहरण अजन्ता का 'राहुल समर्पण' नामक चित्र है, जिसमें कमल पर खड़े भगवान बुद्ध की आकृति यशोधरा की आकृति से अनुपात में बहुत बड़ी बनाई गई है। और यह आकृति भवन के बराबर है। भवन आदि के परिप्रेक्ष्य में चित्रकार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है और दृष्टिक्रम या परिप्रेक्ष्य से आलेखनों की सुंदरता और रूप को नष्ट नहीं होने दिया है। चित्रकार योगी के समान एक ही स्थान पर बैठे-बैठे ध्यान या समाधि के द्वारा समस्त संसार या सृष्टि का अवलोकन कर लेता था और चित्रांकित कर देता था।

**मुकुट, आभूषण तथा अलंकरण**—अजन्ता तथा सभी अन्य गुफाओं के चित्रों में मुकुटों, आभूषणों तथा वस्त्रों को सुंदरता से अंकित किया गया है। राजा और रानी के मुकुटाकारों में ऊँचाई का विशेष अंतर है। देवताओं तथा महापुरुषों के मुकुट शिखर के समान ऊँचे और भव्य हैं। परन्तु सित्तन्नवासल के चित्रों में महादेव का ऊँचा मुकुट उनकी अनोखी जटा-जूट से बनाया गया है। वैसे अजन्ता में मुकुटों के सबसे सुंदर उदाहरण प्राप्त हैं। इन उदाहरणों में नागराज का मुकुट जिसके पीछे पाँच फन का नाग बना है तथा

रेखाचित्र सं० १४
केश कलाप (अजन्ता)

रेखाचित्र सं० ५४ : राजकुमारी
(अजन्ता गुफा सं० १७, सातवीं शताब्दी)

'गृहत्याग' नामक चित्र में बुद्ध का मुकुट उल्लेखनीय है, (देखिए रेखाचित्र—'पद्मपाणि', 'वज्रपाणि' तथा 'गंधर्व युगल') मुकुट की बनावट तथा आकार से ही व्यक्ति का पद, चरित्र या महत्व समझ में आ जाता है। आभूषणों में वक्षस्थल पर बहुमूल्य रत्नों से जड़ित मोतियों की लड़ियोंदार लम्बी मालाओं तथा गरदन में बड़े-बड़े मोतियों की मालाओं तथा कण्ठकन्ठी का इस शैली में प्रयोग किया गया है। मोतियों की मालाएँ मुकुटों से माथे पर लटकती तथा गरदन से वक्षस्थल पर गंगा तथा यमुना या किसी लता के समान लहराती सी प्रतीत होती हैं। अन्य आभूषणों में कानों के चक्र कुण्डल, बिन्दाकार कुण्डल, मकराकार कुण्डल, भुजाओं में अनन्त तथा कमर में मोतियों या कड़ियों से युक्त करधनियाँ चित्रित की गई हैं। (देखिए रेखाचित्र—'वज्रपाणि', 'नागदम्पति', 'अप्सरा' तथा 'राजकुमारी') हाथों में सुन्दर गोल सुडौल कड़ों को पहने लम्बे हाथों वाली स्त्रियाँ मनोहारी बन गई हैं। कपड़ों, पर्दों, कालीनों, कनातों तथा वस्त्रों आदि को सजाने के लिये सुन्दर आलेखन बनाये गए हैं जिनमें पशु-पक्षियों तथा जलचरों का अंकन है।

**केश-विन्यास**—अजन्ता की चित्रकारी अति प्राचीन है परन्तु आज भी केश शृंगार की शैलियों में आधुनिक स्त्री-जगत अजन्ता की केश-विन्यास प्रणाली से प्रेरणा लेता है। स्त्रियों की लम्बी लहराती नागिन जैसी वेणियों में बंधे बाल, कंधों पर लुढ़कते घुंघराले, वर्तिका ढंग के बाल, जटा या जूड़ेदार (गुंथे हुए) बाल, माथे पर लटकते चिकुर, हवा में उड़ते तरंग केश, खुले एवं छिटके हुए कुन्तल केश, जूड़ों में बंधे बाल आदि अनेक प्रकार के केश-विन्यास को

अनोखा रूप दिया गया है। यदि अजन्ता को केश-विन्यास या केश-सज्जा की खान माना जाए तो अनुचित न होगा। सुंदर, सुकोमल केशों के अतिरिक्त क्रूर और धूलधूसरित या सिंह केसर (राक्षसों के बाल) आदि अनेक प्रकार के बालों के अंकन में भी चित्रकार पीछे नहीं रहा। (देखिए रेखाचित्र–'गायकदल', 'गंधर्व युगल' 'केश-कलाप' तथा 'राजकुमारी')

**स्त्रियों का स्थान**–अजन्ता में स्त्रियों को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है। उनको कहीं भी शील से गिरा हुआ नहीं दिखाया गया है। अधिकांश शरीर के नीचे वाले भाग में स्त्रियाँ साड़ी या अपारदीना (प्रतिहारी आदि) और शरीर के ऊपरी भाग में चोली पहने है। कहीं-कहीं उरोज नग्न भी हैं परन्तु स्त्रियों में प्रकृति, शक्ति और माँ का रूप झलकता है। स्त्रियाँ आभूषणों से युक्त हैं। यशोधरा के रूप में नारी की त्यागमूर्ति कितनी भव्य और महान है, जबकि वह अपना सर्वस्व एकमात्र पुत्र 'राहुल' बुद्धदेव के चरणों में समर्पित कर देती है। चित्रकार ने स्त्री के नाना रूप जैसे–सुंदरी, युवती, विरहणी, संयोगनी, माँ, वृद्धा आदि सब ही का अंकन किया है। परन्तु उसके प्रत्येक रूप में शालीनता और नारी की महान त्याग मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है। स्त्री को सौन्दर्य, कोमलता और शक्ति का अवतार माना गया है।

**आध्यात्मिकता और सहानुभूति की भावना**–अजन्ता के चित्रकार को जड़ तथा चेतन से समान सहानुभूति और संवेदना थी। पशु तथा पक्षियों के चित्रण में आत्मा का वही विकास दिखायी पड़ता है जो मानव आकृति के चित्रण में है। जीव-प्रेम और सहानुभूति के उत्तम चित्र उदाहरणों में अजन्ता के 'महाहंस जातक', 'मृग जातक', 'गज जातक' आदि चित्रों से सुस्पष्ट है कि कलाकार ने इन पशुओं तथा पक्षियों में अपनी जैसी आत्मा का अनुभव किया है और जीव को मानव के समान माना है। बौद्ध धर्म की अहिंसा और बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं, जिनमें वह कभी बोधिसत्व पशु तथा कभी पक्षी के रूप में अवतीर्ण हुए, के कारण भी बौद्ध दर्शन में जीव के प्रति आदर, दया और सहानुभूति आयी। अतएव पशु-पक्षियों की आत्मा का भी अत्यधिक विकसित और उज्ज्वल रूप दिखाया गया है। बुद्ध ने स्वयं भी जीव-हिंसा और बलि का विरोध किया और अहिंसा तथा दया की शिक्षा दी। इन सभी परिस्थितियों का कला पर गहरा प्रभाव पड़ा और कलाकार ने जीव को समादर, सहानुभूति और संवेदना से देखा। इस कारण प्रत्येक आकृति में मानव-आत्मा का साक्षात्कार होता है।

**भाव तथा रूप**–अजन्ता के चित्रकारों ने विभिन्न भावों को रूप की ओट में अपनी तूलिका की सरल रेखाओं से अंकित किया है। भाव-प्रदर्शन के लिए चित्रकार ने हस्तमुद्राओं तथा अंग-भंगिमाओं का सहारा लिया है और इनके द्वारा मूक चित्राकृति को कलाकार ने वाणी प्रदान की है। भय, शान्ति, हर्ष, शृंगार, रौद्र तथा उत्साह आदि भावों को चित्रकार ने चित्र आकृतियों की मुखाकृति पर विधिवत लिख दिया है। भाव की दृष्टि से 'राजा के चरणों पर नर्तकी', 'वेस्सांतर जातक' तथा 'मार-विजय' उत्तम चित्र उदाहरण हैं। भय तथा आतंक, भावना तथा ग्लानि, शान्ति तथा आनंद आदि भावों का इन चित्रों में पूर्ण रूपेण अंकन हुआ

है। भाव के अनुकूल ही चित्रकार ने असंख्य रूपों का निर्माण किया है। रूप आकृति की आत्मा तथा जीवन का प्रतीक है। प्रत्येक आकृति के रूप में अजन्ता के कलाकार ने कमाल कर दिया है। राजा, रानी, साधु, सेवक, दासी, साधु के वेश में धूर्त, वीर-सिपाही, यौद्धा, वैरागी, भिक्षु, तपस्वी, कामनी तथा माँ प्रत्येक रूप में अपना व्यक्ति वैशिष्ट्य है। प्रत्येक आकृति की शारीरिक रचना, मुखाकृति तथा मुद्रा में विशेष अंतर है। मुखाकृति में आँखों की लास्य, भौंह की लचक या सीधापन, जिससे कोमलता या चिन्तन का भाव दिखाया गया है, अजन्ता के चित्रों की अपनी विशेषता है। शरीर का गहरा या हल्का वर्ण स्वयं बोल उठता है कि मैं कौन हूँ। उदाहरणार्थ 'षड्दन्तजातक' कथा के चित्र में बैंगी पर हाथी के दाँत लाते कहारों और 'महाहंस जातक' कथा के चित्र में बहेलिये अपने रूप, छोटे शारीरिक अनुपात (प्रमा) तथा गहरे वर्ण से ही अपना परिचय देते हैं। राजा, रानी, तथा महान पुरुषों के रूप और लावण्य ही उनका परिचय दे देते हैं, उनको ऊँचे आसनों पर बैठा बनाया गया है। इस प्रकार रूप से ही कुलीन तथा दास वर्ग का परिचय हो जाता है।

**युद्ध-दृश्य**—चित्रकार ने जहाँ एक ओर बुद्ध के प्रति भक्ति, श्रद्धा और अहिंसा की भावना अभिव्यक्त की है, वहीं दूसरी ओर उसने सफलता से युद्ध चित्रों तथा भयानक दृश्यों का निर्माण भी किया है। 'डाकिनियों का युद्ध', 'युवतियों का वध करने को उद्यत 'राजा' जो नग्न खड्ग् लिये बैठा है तथा 'विदुर पंडित जातक' चित्र में तेजी से बढ़ते हुए अश्वारोहियों का दल इस प्रकार की प्रभावशाली कृतियाँ हैं। अजन्ता के कलाकार ने यदि एक ओर कोमल-कमनीय रूपों का निर्माण किया है तो दूसरी ओर भयपूर्ण, भयानक, राक्षसी, हिंस्र रूपों का भी सफल्ता से निर्माण किया। 'मार विजय' चित्र में ऐसे अनेक भयंकर राक्षस भगवान बुद्ध पर चढ़ाई करते बनाये गए हैं।

**वस्त्र तथा भवन**—अजन्ता के चित्रों में गुप्तकालीन भवन तथा वास्तु का प्रयोग है, वैसे वाकाटक, शुंग सातवाहन संस्कृतियाँ भी अजन्ता की कला में बोलती हैं। विशेष रूप से कक्ष, वीथिकाएँ, स्तम्भ, चैत्य तथा स्तूप आदि सुंदरता से बनाये गए हैं। इन चित्रों में गुप्तकालीन भव्य पहनावे का विशेष प्रभाव है। पुरुषों को अधिकांश अधोभाग में धोती पहने या शरीर के ऊपरी भाग में चुस्त बाना या ढीला कुर्ता पहने बनाया गया है। स्त्रियों का पहनावा सामान्य रूप से कोहनी तथा आस्तीन की चोली है तथा नीचे के भाग में धोती या आँचल चित्रित है। नर्तकियाँ आदि को विशेष प्रकार का चुस्त कुर्ता तथा तंग पायजामा पहने बनाया गया है। कभी-कभी स्त्रियों के उरोज नग्न हैं, ऊँचे मुकुट तथा लम्बी-लम्बी मालाएँ गुप्त संस्कृति का प्रभाव है।

**आकार, छन्द तथा लय**—कलाकारों ने अपने आकारों को अत्यधिक संगीतमय और आकर्षक बनाने की चेष्टा की है। प्रत्येक वस्तु को एक लयपूर्ण आकार प्रदान करके कलाकार ने अमर सौन्दर्य की रचना की है। प्रत्येक आकृति में सुकोमल कान्टूर है, जिनसे छन्द, लय तथा संगीत उत्पन्न होता है और प्रत्येक आकार की सीमारेखा एक मधुर ध्वनि से झूमती चलती है।

लगी थी और सम्पूर्ण शरीर को घेरते हुए अण्डाकार आभा मण्डल में कमल उत्कीर्ण है जिसके केन्द्र में मणि लगे हुए थे।

पाल राजाओं के समय धातु की प्रतिमाएँ अधिक बनीं। पत्थर में जो प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गयीं थीं उनकी शैली इतनी अच्छी नहीं है। आरम्भिक पाल युग (आठवीं शती) की ही वीणाधर शिव तथा पार्वती की एक युगल प्रतिमा में आकृतियाँ किंचित् स्थूल हो गयी हैं। शिव की मुखाकृति में कुछ चपटापन है जैसा कि मिट्टी के फलकों की आकृतियों में होता है। तांत्रिक प्रभाव के कारण इसमें शिव ऊर्ध्व मेढ़ नग्न दिखाए गये हैं।

पाल राजाओं ने सारनाथ, बोध गया, कपिल वस्तु, वैशाली तथा कुशीनगर के प्राचीन तीर्थों की मरम्मत करायी थी और अनेक बौद्ध मठों तथा संघारामों का निर्माण कराया था। इस प्रकार इनकी कला पर गुप्त शैली का सीधा प्रभाव पड़ा था।

इस प्रकार पूर्व मध्य काल में ब्राह्मण धर्म का पुनः उत्थान होने लगा था। बौद्ध मूर्त्तियों के साथ-साथ शैव, वैष्णव तथा शाक्त देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ भी उत्कीर्ण की जाने लगीं थीं। उत्तर मध्य काल में बौद्ध धर्म के गिने चुने केन्द्रों को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में शैव, वैष्णव तथा शाक्त मूर्त्तियों का प्रचुर संख्या में निर्माण हुआ और तांत्रिक प्रभाव भी सभी ओर दिखाई देने लगा।

# 7

# उत्तर मध्य काल (10वीं से 13वीं शती तक)

उत्तर मध्य काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनेक सुन्दर और विशाल मन्दिरों का निर्माण हुआ और असंख्य मूर्त्तियाँ गढ़ी तथा उत्कीर्ण की गयीं। इस युग में स्थापत्य तथा मूर्त्तिकला के जो विशेष क्षेत्र थे वे प्राय: निम्न नामों से पुकारे जाते हैं–

1. उड़ीसा, 2. बिहार तथा बंगाल, 3. बुन्देलखण्ड, 4. मध्य भारत–मालवा, 5. गुजरात–राजस्थान, 6. उत्तर का पर्वतीय क्षेत्र तथा 7. दक्षिणी भारत। इन क्षेत्रों की कला का पृथक्–पृथक् संक्षिप्त निदर्शन इस प्रकार है–

(1) उड़ीसा—पूर्वी भारत का यह प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। इसके मुख्य उदाहरण भुवनेश्वर, कोणार्क तथा पुरी में हैं।

भुवनेश्वर—यहाँ शैव मत का प्राधान्य रहा है। कहा जाता है कि यहाँ की पवित्र झील के चारों ओर किसी समय लगभग सात हजार मन्दिर बने थे किन्तु अब लगभग एक सौ मन्दिर ही शेष हैं। इनके कारण भुवनेश्वर को मन्दिरों का नगर भी कहा जाता है। इनमें लिंगराज मन्दिर, मुक्तेश्वर मन्दिर, भास्करेश्वर मन्दिर तथा राजारानी मन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ देवताओं के अतिरिक्त शाल-भजिकाओं तथा नायिकाओं की अगणित सुन्दर आकृतियाँ हैं। इनमें दर्पण में मुख देखती हुई रमणी की मूर्त्ति विशेष प्रसिद्ध है।

कोणार्क—यहाँ का सूर्य मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है जो रथ के आकार का बना है। इसमें दोनों ओर बारह-बारह बड़े-बड़े पहिये हैं और इस रथ को खींचते हुए सात अश्व बड़े ही सजीव बनाये गये हैं। किसी समय यह मंदिर सभी ओर से भव्य मूर्तियों से अलंकृत था पर अब केवल जगमोहन तथा नृत्यशाला ही शेष हैं। इसकी रचना 1228 से 1264 ई० के मध्य उड़ीसा के शासक नरसिंह देव के समय हुई थी। सूर्य तथा उनके सारथी अरुण की मूर्तियों के अतिरिक्त ज्योतिष की राशियों का भी अंकन हुआ है। रथ की तीनों ओर की दीवारों पर भी सूर्य देव की आकृति खुदी है। हाथी युद्ध के दृश्य, दरबार, दैनिक जीवन तथा अति मानव और अति प्राकृत अनेक रूप भी यहाँ खुदे हैं जिन्हें देखकर दर्शक कल्पना मिश्रित यथार्थ के एक विचित्र लोक में खो जाता है। इसके अतिरिक्त शृंगार से सम्बन्धित अनेक मिथुन आकृतियाँ भी सर्वत्र बनी हुई हैं।

अलस कन्याएँ, गन्धर्व कन्याएँ तथा नर्तकियों की अनेक आकृतियाँ विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रों आदि से सज्जित सुन्दर मुद्राओं तथा मुस्कराती हुई मुखाकृतियों सहित दिखायी गयी हैं। (फलक चित्र सं० 10) कोणार्क में हाथी को भी एक विशाल आकृति बनी हुई है।

एक ही पत्थर में से निर्मित इस आकृति में पर्याप्त गति और शक्ति है तथा इसे तेरहवीं की उड़ीसा की मूर्त्तिकला के सर्वोत्तम उदाहरणों में से एक माना जाता है।

**पुरी**—यहाँ का जगन्नाथ जी का मन्दिर लोक प्रसिद्ध है। इसका निर्माण गंगेश्वर के 1085-1090 ई० के मध्य माना जाता है। इस मंदिर की मूर्त्तिकला पर बौद्ध प्रभाव भी है बौद्धों के त्रिरत्न की परम्परा में जगन्नाथ, सुभद्रा और बलराम की मूर्त्तियाँ। इनके अति शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी और ब्रह्मा-सावित्री को पुरुष तथा प्रकृति के रूप में कल्पित कि गया है।

उड़ीसा क्षेत्र के इन सभी मन्दिरों के मूर्त्ति-शिल्प में अत्यधिक अलंकरण है। आकृति में कुछ भारीपन तथा दिखावा है। प्राय: सभी स्थानों पर नाग कन्याओं, संगीतबालाओं त नायिका भेद की सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हैं। कुछ मूर्त्तियाँ मातृत्व की व्यंजक भी हैं पर अधिकां में स्त्री-पुरुषों की नग्न मूर्त्तियाँ अश्लीलता से भरी हैं। उड़ीसा के कलाकारों ने नटराज शि का भी अंकन किया है।

**(2) बिहार तथा बिहार—**

इस क्षेत्र की उत्तर मध्यकालीन मूर्त्तियाँ पाल तथा सेन शासकों के समय बनी हैं। अधिकांश मूर्त्तियाँ धातु की बनी हैं जिनमें आलंकारिकता बहुत अधिक दिखायी देती है। पाल शासकों के समय बौद्ध मूर्त्तियाँ बनीं किन्तु सेन राजाओं के समय हिन्दू धर्म का अधिक प्रचार हुआ। अनेक मंदिर बने। इस युग की काले पत्थर की बनी अनेक सुन्दर प्रतिमाओं में से एक विष्णु की मूर्ति इस समय भारत कला भवन काशी में सुरक्षित है। गंगा आदि नदी देवियों की प्रतिमाएँ इस क्षेत्र में सर्व प्रथम इसी युग के लगभग बननी आरम्भ हुई। गंगा की एक मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है जो बारहवीं शती की है। इसमें गंगा के हाथ में छोटा-सा कलश है और सिर के पीछे कल्प-वृक्ष है।

**(3) बुन्देलखण्ड—**

इस क्षेत्र में कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण चन्देल राजाओं का बनवाया खजुराहो मन्दिर समूह है। यहाँ जैन तथा हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हुआ है जिनकी संख्या 30 से भी अधिक है। इनका समय 10वीं तथा 11वीं शती है। प्राय: सभी मन्दिर ऊँची चौकी पर बने हैं और विशाल होते हुए भी बहुत अलंकृत बनाये गये हैं। इन सब मन्दिरों में कन्दरिया महादेव मन्दिर मुख्य है। इसके बाहरी भाग में उभरी हुई नक्काशी में 560 के लगभग शिल्प-चित्र विद्यमान हैं। यहां का दूसरा प्रसिद्ध स्थल लक्ष्मण-मन्दिर है। यह लक्ष्मवर्मन द्वारा बनवाया गया था और विष्णु को समर्पित है। विष्णु की प्रतिमा यहाँ कन्नौज से मंगाई गयी थी।

यहाँ के मन्दिरों की कल्पना ऐसे पर्वतों के रूप में की गयी है जहाँ देवता रहते हैं। इसी लिए इन मन्दिरों के शिखर क्रमश: ऊँचे होते हुए बनाए गये हैं। जिस प्रकार पर्वतों पर अनेक किन्नर-गन्धर्व आदि विहार करते हैं उसी प्रकार इन मन्दिरों की बाहरी दीवारों तथा प्रदक्षिणा पथ आदि में आनन्द मनाते हुए स्त्री-पुरुष अंकित किए गये हैं। यहां के जैन मन्दिरों में भी यद्यपि बहुत अधिक सजावट है तथापि उनमें शृंगारिक विषयों का अंकन नहीं हुआ है।

हिन्दू मन्दिरों में शैव तथा शाक्त धर्म की मूर्त्तियाँ अधिक हैं, विष्णु की कम हैं। सूर्य तथा लक्ष्मी आदि के भी मन्दिर हैं। शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी तथा गणेश-लक्ष्मी आदि युगल मूर्त्तियों में भी ताँत्रिक प्रभाव है।

**मिथुन आकृतियाँ**—खजुराहो के मन्दिरों में तत्कालीन वाम मार्ग तथा ताँत्रिक साधनाओं का प्रभाव भी देखने को मिलता है जिसके कारण स्त्री-पुरुषों की मिथुन आकृतियाँ अनेक स्थितियों में अंकित की गयी हैं। यद्यपि इनमें अश्लील रूप अधिक हैं फिर भी कहीं-कहीं प्रेम-विभोर स्वाभाविक अवस्था के दृश्य भी मिल जाते हैं। शृंगार पूर्ण दृश्यों में कहीं दो आकृतियाँ हैं, कहीं अधिक।

**क्रीड़ा करती सुन्दरियाँ**—खजुराहो के मूर्त्ति शिल्प में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं अथवा क्रीड़ाओं में संलग्न सुन्दरियों की भी अनेक आकृतियाँ बनी हैं जैसे कन्दुक-क्रीड़ा, शुक क्रीड़ा, वानर क्रीड़ा, केश संवारना, दर्पण में मुख देखना, नेत्रों में अंजन लगाना, होठों पर रंग लगाना, पैरों में महावर लगाना, हाथ में प्रसाधन-पात्र लेना, वंशी बजाना, नृत्य की तैयारी में पैर में नूपुर बाँधना आदि। (फलक चित्र संख्या 11)

**पारिवारिक जीवन तथा लोक-जीवन**—खजुराहो की भित्तियों पर अनेक ऐसी आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं जो उस समय के पारिवारिक तथा लोक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्रिया-कलापों को प्रस्तुत करती हैं। एक स्थान पर एक स्त्री अपने शिशु को दुलार रही है। एक अन्य आकृति में परदेश गये पति का पत्र मिलने पर नायिका चित्र-रचना करने बैठी है। पार्श्वनाथ मन्दिर के एक शिल्प में अंकित स्त्री-पुरुष किसी विषय पर वाद-विवाद कर रहे हैं।

लोक-जीवन के भी अनेक पक्षों का अंकन यहाँ के मूर्ति-शिल्प में हुआ है। कन्दरिया महादेव तथा लक्ष्मण मन्दिर में लड़कियों को नृत्य की शिक्षा देने का भी अंकन है। एक अन्य विषय पाठशाला भी है जिसका अंकन यहां उक्त दोनों ही मन्दिरों में हुआ है। नृत्य-संगीत मण्डली आदि के भी सुन्दर दृश्य अंकित हैं। लोक जीवन के अन्य विषयों में मल्लयुद्ध भी दिखाया गया है। एक भग्न शिला-खण्ड पर कई व्यक्तियों को धान कूटते चित्रित किया गया है। एक अन्य प्रस्तर खण्ड पर छह श्रमिक एक बड़े शिला खण्ड को बांस पर लटका कर कन्धों के बल ढोकर ले जाते हुए दिखाये गये हैं। कहीं चित्राचार्य किसी पट्ट पर चित्रांकन करते उत्कीर्ण है। उनके आगे तथा पीछे अनेक शिष्य खड़े हैं। एक अन्य शिल्प में आश्रम (अथवा वन) में रहने वालों का जीवन चित्रित किया गया है और दूध दुहना, पशु पालना तथा जंगल से लकड़ी काटकर लाना आदि कार्यों को दिखाया गया है।

**युद्ध**—खजुराहो के मूर्ति शिल्प में चन्देल शासकों के युद्धों का भी चित्रण हुआ है। लक्ष्मण-मन्दिर में एक वीर पुरुष घोड़े पर बैठ कर अपने रक्षक सिपाहियों सहित युद्ध भूमि की ओर जाता हुआ अंकित है। एक अन्य शिल्प में तलवार तथा भालों से युक्त सैनिकों के पीछे घुड़सवार जा रहे हैं एक ओर दृश्य में पैदल सैनिक, घुड़सवार और हाथी युद्ध के लिए जा रहे हैं।

**पशु प्रतिमाएँ**—खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर में दो पशु प्रतिमाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके नन्दी मण्डप में शिव के वाहन "नन्दी" नामक बैल की 6 फुट ऊँची तथा सवा सात फुट लम्बी प्रतिमा है। यह बहुत ओपदार तथा चमकीली है। यहीं पर एक अन्य मूर्ति भगवान वाराह की है। केवल एक ही पत्थर में से बनाई गयी $20\frac{1}{2} \times 16$ फुट की विशाल आकर की

इस प्रतिमा के पूरे शरीर पर हिन्दू देवी-देवताओं की छोटी-छोटी आकृतियाँ कई पंक्तियों में उभारी गयी हैं।

इन धार्मिक-पौराणिक पशु आकृतियों के अतिरिक्त यहां स्थान-स्थान पर अनेक शार्दूल भी उत्कीर्ण किए गये हैं जिनके रूप में मुख्य अंश सिंह का है, शेष बातें विचित्र हैं। ये अंलकृत भी हैं। इनकी एक विशेषता यह भी है कि इनके नीचे प्राय: एक नारी आकृति बैठी हुई अंकित है जो इनके मुख की ओर देख रही है।

खजुराहो के सभी हिन्दू तथा जैन मन्दिरों की शैली एक है। इनमें अन्तर केवल दो बातों का है। एक तो मन्दिरों में मूर्तियों के विषयों का और दूसरे इनकी बाहरी दीवारों पर अंकित शृंगार पूर्ण दृश्यों का। जैन मन्दिरों में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अंकित हैं और बाहर शृंगारपूर्ण दृश्य नहीं हैं। हिन्दू मन्दिरों में हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तथा शृंगारपूर्ण दृश्यों की भरमार है।

**(4) मध्य भारत-मालवा**

इस क्षेत्र में उत्तर मध्य काल में निम्नलिखित प्रसिद्ध स्थान रहे हैं—

**सास-बहू मन्दिर (ग्वालियर)**—यहाँ के किले में राजा महिपाल द्वारा निर्मित 1093 ई० का बना एक मन्दिर है जिसे सास-बहू (सहस्रबाहु) का मन्दिर करते हैं। यह अत्यन्त सुन्दर है। इसके स्तम्भों आदि पर सुन्दर आकृतियाँ तथा अलंकरण उत्कीर्ण हैं। यहीं पर एक दूसरा मन्दिर भी है जिसे 'तेली का मन्दिर' कहते हैं। किले के निकट एक चतुर्भुज मन्दिर है जिसे नवीं शती में कन्नौज के राजा रामदेव ने बनवाया था। किले में स्थान-स्थान पर जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ स्थापित हैं पर उनकी कला उत्कृष्ट नहीं है।

**चौंसठ योगिनी मन्दिर (जबलपुर)**—यहाँ भेड़ाघाट नामक क्षेत्र में चौंसठ योगिनी मन्दिर है जिसे कल्चुरी शासकों ने बनवाया था। इस स्थान पर योगिनियों की प्रतिमाएँ विभिन्न स्थितियों, स्वरूपों तथा मुद्राओं में तांत्रिक साधना पद्धति पर बनी हुई थीं, जिनमें से अनेक क्षत-विक्षत हो गई हैं। यह मन्दिर 10 वीं शती में बना था और इसके निकट अन्य मन्दिर भी बने थे। 12 वीं शती तक की इस क्षेत्र की अनेक कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें शैव तथा शाक्त मूर्तियों के अतिरिक्त सुर-सुन्दरियों की अनेक मन-मोहक प्रतिमाएँ भी हैं।

**नीलकण्ठ (उदयेश्वर) मन्दिर (उदयपुर, म० प्र०)**—मालवा के परमार राजाओं ने अनेक सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कराया था। इनमें प्राचीन ग्वालियर राज्य-सीमा के अन्तर्गत भिलसा के पास उदयपुर नामक स्थान पर राजा भोज के भतीजे उदयादित्य ने नीलकण्ठ अथवा उदयेश्वर शिव की स्थापना की थी। इस मन्दिर के विमान के सामने वाले भाग में नटराज शिव की बड़ी सुन्दर प्रतिमा उत्कीर्ण है। परमारों की राजधानी धारा नगरी थी जहाँ राजा भोज ने सरस्वती की एक सुन्दर प्रतिमा स्थापित की थी।

**उज्जैन**—यहाँ का महाकालेश्वर मन्दिर अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध है। इसके निकट बने हर-सिद्धी देवी के मन्दिर में विक्रमादित्य ने तपस्या की थी। यहाँ जो प्रतिमाएँ मिली हैं उनमें चतुर्भुजी विष्णु की दो प्रतिमाएँ तथा अष्टभुजी नटराज की एक प्रतिमा बहुत महत्वपूर्ण है। नटराज की अष्टभुजी प्रतिमा ग्यारहवीं शती की है और आज कल ग्वालियर किले के संग्रहालय

में हैं। शरीर के अंगों में कहीं-कहीं अनुपातहीनता अथवा आकृति-रचना की दुर्बलता स्पष्ट दिखायी देती है। विष्णु की प्रतिमा में भी चेहरा चौड़ा तथा बड़ा है किन्तु पैर छोटे हैं।

राजा भोज ने सोमनाथ मन्दिर का भी जीर्णोद्धार कराया था।

**(5) राजस्थान-गुजरात**

इस क्षेत्र में जो कला-परम्पराएँ गुर्जर-प्रातीहारों ने स्थापित की थीं वे उनके उत्तराधिकारी चालुक्य शासकों के समय भी चलती रहीं। उत्तर-मध्यकाल में इस क्षेत्र में निम्न कला-केन्द्र विशेष प्रसिद्ध हुए-

**ओसिया**--इस युग में राजस्थान के अधिकांश भाग पर गुजरात का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभुत्व था। राजस्थान के जोधपुर राज्य में ओसिया नामक स्थान में बारह मन्दिर हैं जिनमें सूर्य मन्दिर मुख्य है। गुजरात का मोढेरा का सूर्य मन्दिर भी इस युग की बहुत महत्वपूर्ण रचना है। इन दोनों ही स्थानों पर देवी-देवताओं तथा विष्णु के अवतारों के अतिरिक्त सुन्दरियों एवं अप्सराओं की अनेक आकृतियों से भी ये मन्दिर प्रचुर रूप से अलंकृत हैं। दक्षिणी राजस्थान के कुम्भरिया नामक स्थान पर जैन धर्म से सम्बन्धित नेमिनाथ मन्दिर तथा पार्श्वनाथ मन्दिर निर्मित हुए। इनके मण्डपों के स्तम्भों आदि पर अनेक सुन्दर आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं, इन स्थानों की आकृतियों में भारीपन या स्थूलता नहीं है पर आलंकारिकता अधिक है। छोटे-से-छोटे स्थान पर खुदी हुई आकृतियों में जो उभार और गहराई है उससे ऐसा लगता है कि आकृतियों की पूर्ण वर्तुलता में थोड़ी ही कसर शेष रह गयी है। उभरी हुई आकृतियों के भीतरी भागों को पोला किया गया है।

गुजरात के द्वारका स्थित श्रीकृष्ण को समर्पित मन्दिर, देलवाड़ा ग्राम के निकट आबू पर्वत के जैन मन्दिर, गिरनार के जैन मन्दिर एवं सोमनाथ पाटन का सोमनाथ शिव मन्दिर वास्तु कला तथा मूर्तिकला की दृष्टि से विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। सोमनाथ में जैन मन्दिर भी हैं।

इन सभी मन्दिरों में जो आकृतियाँ और आलंकारिक अभिप्राय हैं वे आलेखनों की भाँति बार-बार दुहराये गये हैं। कारीगरी में बारीकी और जालीदार उभार बहुत अधिक हैं । मन्दिरों के प्रत्येक भाग को अलंकृत कर दिया गया है। आबू में श्वेत संगमरमर का बहुत प्रयोग हुआ है। स्तम्भों तथा दीवारों के अतिरिक्त छतों में भी सुन्दर अलंकरण बने हैं। देवी-देवताओं तथा अप्सराओं की भंगिमाएँ, वस्त्र एवं आभूषण बहुत सुन्दर और पर्याप्त परिश्रम-पूर्वक बनाये गये हैं। इस युग की इन प्रतिमाओं में भाव की गहराई नहीं है, बाहरी सौन्दर्य की तड़क-भड़क अधिक है। बलखाती हुई देह का अतिरंजित प्रदर्शन हुआ है।

**(6) उत्तर का पर्वतीय क्षेत्र--**

इस काल के उत्तर भारत के पर्वतीय प्रदेश में भी अनेक मन्दिर बने जिनमें पूजा हेतु विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं तथा बाहरी दीवारों और स्तम्भों का अलंकरण हुआ। कांगड़ा की दून घाटी में पहाड़ में काटकर बनाये गये मसरुर के मन्दिर अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं। बैजनाथ, सिद्धनाथ, अल्मोड़ा आदि में भी अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। नवीं से बारहवीं शती तक कलचुरी शासकों ने जिस प्रकार मध्य भारत में चौंसठ योगिनी आदि मन्दिरों का निर्माण कराया था उसी प्रकार सम्पूर्ण केदार खण्ड में विभिन्न तीर्थ स्थलों

पर मन्दिर बनाये गये। काश्मीर में भी अनेक मंदिर बने जिनमें काश्मीर नरेश ललितादित्य द्वारा बनवाया हुआ मार्तण्ड मंदिर बहुत महत्वपूर्ण है। यह आठवीं शती का है। इसी समय वहाँ शंकराचार्य मंदिर भी बना। नवीं शती में अवन्तीपुर नामक स्थान पर अवन्तिस्वामी का विष्णु मन्दिर और अवन्तीश्वर शिव मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं। काश्मीर में उस समय की विष्णु की अधिकांश प्रतिमाएँ चतुर्मुखी हैं जिनमें नृसिंह, वाराह तथा कपिल के तीन अन्य मुख भी दिखाये गये हैं। काश्मीर में ऐसी प्रतिमाओं को बैकुण्ठवासी विष्णु की प्रतिमाएँ कहते हैं। गदा को देवी तथा चक्र को पुरुष के रूप में दोनों ओर खड़े दिखाया गया है।

नेपाल में उस समय शैव तथा बौद्ध दोनों सम्प्रदायों के मन्दिरों का निर्माण हुआ। सभी मन्दिरों की मूर्त्तिकला पर तत्कालीन मध्य भारत तथा बंगाल की शैली का प्रभाव है। कुछ प्रभाव गान्धार शैली का भी अवशिष्ट है। नेपाल में विष्णु की विराट् पुरुष तथा त्रिविक्रम प्रतिमाएँ बहुत प्रभावशाली हैं। विराट् पुरुष प्रतिमा में दस हाथ हैं और सम्भवतः बारह मुख थे। पृथ्वी को स्त्री के रूप में विष्णु के पैरों के नीचे उठती हुई अंकित किया गया है। दिग्गज और नाग उनकी सहायता कर रहे हैं। नीचे शेषशायी विष्णु अंकित हैं। त्रिविक्रम की प्रतिमा में विष्णु का एक पैर पाताल में और दूसरा आकाश में है। पाताल को शेषनाग तथा आकाश को राहु के द्वारा प्रतीक विधि से दिखाया गया है। सपत्नीक राजा बलि, शुक्राचार्य तथा यज्ञ का अश्व आदि भी आस-पास अंकित हैं।

**(7) दक्षिण भारत—**

इस क्षेत्र की उत्तर-मध्यकालीन मूर्त्तिकला निम्नलिखित राजवंशों के आश्रय में विकसित हुई—

**चोल कला—**

चोल राजाओं ने दक्षिण भारत की कला को कुछ महान कृतियाँ निर्मित करने का सुअवसर और संरक्षण प्रदान किया। यद्यपि इनके राज्यकाल में अनेक छोटे-छोटे मंदिर निर्मित हुए पर विशेष महत्वपूर्ण कृतियाँ वृहदीश्वर मंदिर तंजौर तथा गंगेकोण्डचोलपुरम् मंदिर की हैं। ये मंदिर क्रमशः 985-1018 ई० तथा 1018-1033 ई० के मध्य निर्मित हुए। इनमें नटराज शिव, गणेश, चण्डिकेश, अप्सरायें, गण, यक्ष, राक्षस तथा पौराणिक पात्र एवं कथानक उत्कीर्ण हैं।

आरम्भिक चोल प्रतिमाओं में मानव शरीर को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। रूप को किसी विशेष शैली के अनुकूल अथवा आलंकारिक बनाने का प्रयत्न नहीं है। मुखाकृतियों में दक्षिण भारतीय प्रभाव है। विकसित चोल काल में सिर का मुकुट तथा भुजाओं आदि के आभूषण बहुत अधिक हो गये हैं और शरीर में कुछ कठोरता आ गयी है। इस समय कांस्य मूर्त्तियाँ भी बहुत बनीं। इनमें आलंकारिता के अतिरिक्त किंचित् लम्बाई भी है। चोल काल की कांस्य मूर्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। विशेष रूप से नटराज की मूर्ति में कला, धर्म और दर्शन का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। वास्तव में तंजौर की मूर्त्तिकला पत्थर की अपेक्षा पीतल और कांसे में अधिक प्रकट हुई है। (फलक चित्र सं० 12)

चोल कालीन मंदिरों के शार्दूल और उड़ानदार घोड़े अत्यन्त संजीव बन पड़े हैं। इन मूर्त्तियों के बाद दक्षिण की मूर्तिकला में रूढ़ि और परम्परा का प्रभुत्व प्रारम्भ हो गया।